खंड

2

प्रतिमानाटकम्

इकाई 7
प्रतिमानाटकम् का परिचय 93

इकाई 8
प्रतिमानाटकम् (प्रथम अंक) – भाग 1 110

इकाई 9
प्रतिमानाटकम् (प्रथम अंक) – भाग 2 138

इकाई 10
प्रतिमानाटकम् (तृतीय अंक) – भाग 3 158

इकाई 11
प्रतिमानाटकम् (तृतीय अंक) – भाग 4 179

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 2 का परिचय

'संस्कृत नाटक' पाठ्यक्रम का यह द्वितीय खण्ड आपके लिए प्रस्तुत है। इस खण्ड में 5 इकाइयाँ हैं। इस खण्ड की सभी इकाइयाँ भास कवि विरचित 'प्रतिमानाटकम्' से सम्बन्धित हैं। महाकवि भास का संस्कृत नाट्य साहित्य में विशेष स्थान है। उन्होंने 13 नाटकों का प्रणयन किया। इस खण्ड में आप भास कवि के परिचय के साथ 'प्रतिमानाटकम्' का परिचय प्राप्त करेंगे। भास कवि प्रणीत इस नाटक में 7 अंक हैं जिसमें राम के राज्याभिषेक के रुकने, वनवास, सीता-हरण, रावण-वध और राम के राज्याभिषेक होने का वर्णन किया गया है। इस खण्ड में आप प्रतिमानाटक की कथावस्तु तथा प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित होंगे। इसके साथ ही आप प्रतिमानाटक के प्रथम और तृतीय अंक के संवादों एवं श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

तकनीकी और कठिन शब्दों को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक इकाई में आवश्यक शब्दावली दी गई है। साथ ही अध्ययन में उपयोगी पुस्तकों की सूची प्रत्येक इकाई के अन्त में दी गई है। इन पुस्तकों के सहयोग से आप सम्बन्धित विषय का और अधिक अध्ययन कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 7 प्रतिमानाटकम् का परिचय

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भास का परिचय

7.3 प्रतिमानाटकम् नाटक का परिचय

- 7.3.1 नामकरण की सार्थकता
- 7.3.2 नाटक की कथावस्तु
- 7.3.3 प्रथम अंक की कथा
- 7.3.4 तृतीय अंक की कथा
- 7.3.5 प्रतिमानाटकम् नाटक की प्रमुख सूक्तियाँ

7.4 प्रतिमानाटकम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

- 7.4.1 राम का चरित्र-चित्रण
- 7.4.2 सीता का चरित्र-चित्रण
- 7.4.3 भरत का चरित्र-चित्रण
- 7.4.4 लक्ष्मण का चरित्र-चित्रण
- 7.4.5 दशरथ का चरित्र-चित्रण
- 7.4.6 कैकेयी का चरित्र-चित्रण
- 7.4.7 कौशल्या का चरित्र-चित्रण

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भास कवि का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- प्रतिमानाटक के नामकरण, इसके प्रथम एवं तृतीय अंक की कथा का परिचय प्राप्त करेंगे।
- राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, और कौशल्या इत्यादि पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से भी अवगत हो सकेंगे।
- प्रतिमानाटक की प्रमुख सूक्तियों से परिचित होंगे।

7.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाट्यकारों में अग्रगण्य महाकवि भास विरचित त्रयोदश नाट्यकृतियों में प्रतिमानाटक का अपना एक विशिष्ट स्थान है। यह नाटक भास की नाट्यकला का उन्नत निदर्शन है। साहित्य की अनेक विधाओं में नाट्य विधा, दृश्य एवं अभिनेय होने

के कारण अति महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। नाट्य दर्शक के नेत्रपथ को आलोकित करते हुए हृदय को आह्लादित एवं चमत्कृत करता है। काव्य के निगूढ़ रसास्वादन से वञ्चित सामान्यजन भी नाट्य के मनोहर अभिनय से असीम आनन्द का अनुभव करता है। दर्शकानुरञ्जन का सशक्त साधन होने से यह कवित्व की पराकाष्ठा है – **नाटकान्तं कवित्वम्**। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्य के वैशिष्ट्य को रेखाङ्कित करते हुए कहा है कि यह तीनों लोकों के विशाल भावों का अभिव्यञ्जन है तथा यह सभी वेदों का सार पंचम वेद है, जिसमें सभी प्रकार के ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग समाहित हैं। वस्तुतः ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जो नाट्य में समाहित न हो –

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

7.2 भास का परिचय

कविता कामिनी-हास महाकवि भास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय एवं आदि नाटककार हैं। वह संस्कृत नाट्य साहित्य के सर्वाधिक प्रकाशमान नक्षत्र हैं। संस्कृत नाटककारों में उनका नाम बड़े ही आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। भास ने अपनी नाट्याभा से परवर्ती नाटककारों के नाट्यपथ को आलोकित किया है। परवर्ती नाटककारों ने उनके लेखनकौशल का अनुकरण किया है और उनकी रचनाओं को अपनी लेखनी का उपजीव्य भी बनाया है। महाकवि कालिदास भी भास की नाट्यकला से अत्यन्त प्रभावित थे। इसीलिए उन्होंने अपने **मालविकाग्निमित्रम्** नामक नाटक की प्रस्तावना में स्पष्टतया भास की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि **"प्रथितयशसा भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः"** अर्थात् भास, सौमिल्ल, कविपुत्र जैसे ख्यातिप्राप्त नाटककारों की कृतियों के रहते हुये इस कालिदास को किस प्रकार समादर प्राप्त होगा। कालिदास के परवर्ती कवियों, नाटककारों ने भी भास का अत्यन्त समादृत रूप में उल्लेख किया है। कालिदास के पश्चात् बाणभट्ट ने अपने **'हर्षचरित'** में, दण्डी ने **'अवन्तिसुन्दरी कथा'** में, राजशेखर ने **'काव्यमीमांसा'** में जबकि पीयूषवर्ष जयदेव ने **'प्रसन्नराघव'** में भास की नाट्यकला के प्रति अत्यन्त आदर का भाव प्रदर्शित किया है। ए.बी. कीथ ने भी भास के नाटकीय गुणों एवं काव्यशैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

इन विवेचनों से स्पष्ट होता है कि कालिदास के आविर्भाव के पहले से ही महाकवि भास की कीर्तिकौमुदी दिग्दिगन्त व्याप्त हो चुकी थी, जो उनके आविर्भाव के पश्चात् भी अनवरत प्रवाहमान रही। संस्कृत साहित्य परम्परा ने महाकवि भास को एक उच्चकोटि के लब्धप्रतिष्ठ एवं उत्कृष्ट नाटककार के रूप में स्वीकृति दी है किन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि ऐसे अग्रणी सुप्रसिद्ध नाटककार के जीवन-वृत्त, जन्मस्थान, काल इत्यादि का अद्यावधिपर्यन्त वास्तविक निर्धारण नहीं हो सका है। प्राचीन कवियों के जीवन-वृत्त एवं काल का निर्धारण प्रायः उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में इस तथ्य से सम्बन्धित प्राप्त साक्ष्यों से आसानी से सम्भव हो पाता है किन्तु कालिदास, शूद्रक आदि के समान भास ने भी अपने जीवन-वृत्त से जुड़े किसी भी पक्ष का प्रतिपादन नहीं किया है। उन्होंने तो अपनी रचनाओं में अपना नामोल्लेख तक नहीं किया है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि भास ने लेखन प्रसिद्धि एवं प्रशंसा की प्राप्ति के लिए नहीं किया था, अपितु उनका एक मात्र लक्ष्य लोकानुरञ्जन एवं

आत्मतुष्टि ही था। भास के द्वारा स्वसम्बन्धी लिखित किसी भी साक्ष्य के अभाव में इनके जीवन-वृत्त का यथातथ्य निर्धारण सर्वथा असम्भव है। आज भास से सम्बन्धित जो भी जानकारी मिलती है, उसका सर्वाधिक प्रामाणिक आधार उनके ऊपर महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री का अनुसन्धान है। शास्त्री ने ही सर्वप्रथम 1909 ईस्वी में ट्रावनकोर राज्य से भास रचित तेरह नाटकों को प्राप्त कर 1912 ईस्वी में इनका प्रकाशन किया था। इसको आधार बनाकर ही आलोचकों ने इसमें प्राप्त विभिन्न अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आलोक में भास विरचित नाटकगत विषयवस्तु की मीमांसा कर इनके जीवनचरित्र एवं काल-निर्धारण का प्रयास किया है। जिनका अग्रवर्ती बिन्दुओं द्वारा उपस्थापन किया जा रहा है।

i) भास का व्यक्तित्व

भास कब और कहाँ पैदा हुए थे? इनका वास्तविक नाम क्या था? इनके माता-पिता कौन थे? इन्होंने किस जाति, कुल अथवा गोत्र में जन्म लिया था? इनकी शिक्षा-दीक्षा कहाँ तक हुई थी? इनके गुरु कौन थे? इत्यादि प्रश्न प्रामाणिक साक्ष्यों के अभाव में आज भी अनुत्तरित ही हैं। इससे सम्बन्धित सभी विचार प्रायः अनुमानाश्रित हैं। जिनके सद्हेतु का निर्धारण न होने से उनकी प्रामाणिकता भी सन्देहाश्रित ही है। इनके नाटकों में दक्षिण भारतीय स्थलों के निरूपण की न्यूनता परिलक्षित होती है। दक्षिण भारत के जिन स्थलों का निरूपण मिलता भी है, उसका विधिवत् उल्लेख नहीं मिलता है। जबकि जब हम इसी दृष्टि से उत्तर भारत के स्थलों के निरूपण पर दृष्टिपात् करते हैं, तो पाते हैं कि भास ने इन स्थलों का न केवल विस्तृत विवेचन किया है, अपितु इनकी तात्कालिक भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। उदाहरणस्वरूप रामकथाश्रित चाहे प्रतिमानाटक हो या फिर अभिषेकनाटक, महाभारत एवं लोककथाश्रित इनके सभी नाटकों में उत्तर भारत के स्थलों का सविस्तार विवेचन मिलता है। अयोध्या, ब्रज, मथुरा, हस्तिनापुर, वत्स, अवन्ति, उज्जयिनी, मगध, पाटलिपुत्र इत्यादि स्थलों के विधिवत् निरूपण से ऐसा आभास तो होता ही है कि भास का जन्म सम्भवतः उत्तर भारत में ही कहीं पर हुआ था। भास ने अपने नाटकों में परिष्कृत संस्कृत एवं प्रौढ़ प्राकृत का प्रयोग किया है। इनके नाटकों के उच्चकोटिक अधिसंख्य पात्र विशुद्ध संस्कृत का प्रयोग करते हैं जो इस बात का अभिद्योतक है कि भास के समय में संस्कृत बोल-चाल की भाषा रही होगी। यह उनके संस्कृत के प्रकाण्ड पाण्डित्य का भी परिचायक है। इनके नाटकों के मध्यम एवं निम्नवर्ग के पात्र प्राकृत एवं उसके भेदोपभेद का प्रयोग करते हैं। दोनों ही भाषाओं का जो स्वरूप इनके नाटकों में परिलक्षित होता है, वह इनके इन भाषाओं के परिज्ञान का परिचायक है। भास के नाटकों के अनुशीलन से उनके बहुश्रुत एवं बहुविध शास्त्र मर्मज्ञ होने का पता भी चलता है। उन्होंने अपने नाटकों में वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण, स्मृतिग्रन्थ, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, लोककथाएँ आदि नाना शास्त्रों से उद्धरण एवं प्रतिपाद्यों का उपस्थापन किया है। भास की जाति एवं गोत्र का अनुमान लगा पाना तो कठिन है, किन्तु इन्होंने अपने आधे से अधिक नाटकों का प्रणयन भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्ण की कथा का आश्रय लेकर किया है, अतः यह निःसन्देह स्वीकार किया जा सकता है कि भास सनातन धर्म मतावलम्बी थे। यतः राम एवं श्रीकृष्ण भगवान् विष्णु के ही अवतार माने जाते हैं, अतः इन्हें कुछ विद्वान् वैष्णव धर्मावलम्बी भी मानते हैं।

ii) भास का समय

भास के व्यक्तित्व की तरह इनका काल-निर्धारण अतीव जटिल है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् में भास का स्मरण अत्यन्त आदर के साथ किया है। अतः यह तो निर्विवाद सत्य है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। अब समस्या यह है कि कवि कालिदास का समय भी अनिश्चित ही है। ऐसी स्थिति में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। बहुमत कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ईसापूर्व स्वीकार करती है। अतः ईसापूर्व प्रथम शताब्दी भास की अपर सीमा मानी जा सकती है। भास ने अपने नाटकों में प्रद्योत, दर्शक, उदयन इत्यादि को समानकालिक मानकर वर्णन किया है। इन तीनों ही राजाओं का समय इतिहासकार पांचवीं शताब्दी ईसापूर्व स्वीकार करते हैं। यतः भास ने स्वप्नवासवदत्तम् में दर्शकादि राजाओं का वर्णन किया है, अतः वे इनके पश्चात्वर्ती ही रहे होंगे। इस प्रकार भास कालिदास से पूर्ववर्ती तथा दर्शकादि राजाओं के पश्चात्वर्ती हैं, यह तो स्पष्ट है। तथापि इनका वास्तविक समय अस्पष्ट ही रहता है। बहुमत भास का समय चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व स्वीकार करने का पक्षधर है, अतः इनका समय चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व माना जा सकता है।

iii) भास का कर्तृत्व

भास के व्यक्तित्व की समान उनके कर्तृत्व को लेकर इतना विवाद नहीं दिखलाई पड़ता है। महामहोपाध्याय पंडित टी. गणपति शास्त्री ने जब तेरह नाटकों को भास के नाम से प्रकाशित किया था, तब अवश्य ही आलोचकों ने यह शंकाएं उपस्थापित कीं कि क्या ये तेरह नाटक भास द्वारा ही रचित हैं, या इनमें से कुछेक ही उनकी वास्तविक रचनाएं हैं किन्तु भाषा, भाव, शैली, वर्णन एवं सहजावबोध की साम्यता के आधार पर अधिकांश विद्वानों ने पण्डित टी. गणपति शास्त्री के मत से अपनी सहमति प्रदान कर दी। भास के तेरह नाटकों को कथानक के आधार पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है –

क) रामकथा पर आश्रित नाटक – भगवान राम की कथा को आधार बनाकर भास ने प्रतिमा एवं अभिषेक इन दो नाटकों का लेखन किया है।

ख) महाभारतकथा पर आश्रित नाटक – भास के सबसे अधिक नाटक महाभारत की ही कथा पर अवलम्बित हैं। महाभारत से उपजीव्यत्व लेकर भास ने कुल सात नाटकों की रचना की है – मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य, उरुभंग, पंचरात्र एवं बालचरित ।

ग) लोककथा पर आश्रित नाटक – लोककथाओं के आधार पर भास के तीन नाटक परिलक्षित होते हैं – प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, अविमारक एवं दरिद्रचारुदत्त।

बोध प्रश्न 1

1) अधोलिखित प्रश्नों के लिए सही विकल्प का चयन कीजिए –

i) संस्कृत नाट्य साहित्य का जनक माना जाता है –

क) भरत को

ख) भास को

ग) कालिदास को

घ) भवभूति को

ii) **'भासो हासः'** उक्ति है –

क) कालिदास की

ख) राजशेखर की

ग) जयदेव की

घ) कीथ की

iii) भास का समय स्वीकृत है –

क) प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व

ख) प्रथम शती ईस्वी

ग) द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व

घ) चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व

iv) भास निवासी माने जाते हैं –

क) काश्मीर के

ख) दक्षिण भारत के

ग) उत्तर भारत के

घ) पूर्वोत्तर प्रदेश के

v) भास के नाटकों की खोज की थी –

क) कालिदास ने

ख) मैक्समूलर ने

ग) कीथ ने

घ) टी. गणपति शास्त्री ने

vi) 'कविताकामिनीहास' से अभिहित किया जाता है –

क) कालिदास को

ख) भास को

ग) भवभूति को

घ) शूद्रक को।

vii) भास की रचनाओं की संख्या है –

क) 7

ख) 8

ग) 12

घ) 13

अभ्यास प्रश्न

1) महाकवि भास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।

7.3 प्रतिमानाटकम् नाटक का परिचय

भास विरचित प्रतिमानाटक में कुल सात अंक हैं। इस नाटक को रामकथा के आधार पर लिखा गया है। इसका उपजीव्यत्व तो रामायण से ही लिया गया है तथापि कवि ने अपनी कल्पना एवं मेधाशक्ति से इसमें अपनी मौलिकताएं भी जोड़ दी हैं। प्रतिमानाटक में भास ने राम वनगमन से लेकर रावणवध तथा राम के अयोध्या आगमनोपरान्त उनके राज्याभिषेक तक की घटनाओं का सविस्तार विवेचन किया है।

7.3.1 नामकरण की सार्थकता

प्रतिमानाटक का नामकरण इसके तृतीय अंक के कथानक के आधार पर किया गया है जिसमें प्रतिमागृह की घटना वर्णित है। रामवनगमनोपरान्त बुलावा आने पर ननिहाल से लौटते समय मार्ग में सुस्थापित देवकुल में इक्ष्वाकुवंशीय पूर्वराजाओं के साथ सद्यः स्थापित महाराज दशरथ की प्रतिमा को देखकर सशंकित एवं खिन्नमना भरत को अपने पिता की मृत्यु का आभास भास ने स्वतः करा दिया है। राजाओं की प्रतिमा-निर्माण एवं इसकी स्थापना का कोई भी उल्लेख प्रतिमानाटक के आधार ग्रन्थ रामायण में उल्लिखित नहीं है। यह सर्वथा महाकवि भास की अपनी मौलिकता एवं बुद्धिमत्ता है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के सूचना दिए बिना भी वे इस दारुण-दुःख का भान भरत को करा देते हैं। इस प्रकार प्रतिमा की घटना का सम्पूर्ण प्रकरण कविकल्पना प्रसूत है, और यही इस नाटक की आधारभूमि तथा इसके नामकरण का आधार है। वस्तुतः प्रतिमा दर्शन की घटना का प्राधान्य होने से ही इस नाटक का नाम प्रतिमानाटक पड़ा।

7.3.2 नाटक की कथावस्तु

प्रथम अंक– प्रथम अंक में राम के राज्याभिषेक की तैयारियों के बीच अकस्मात् इन तैयारियों को रोक दिया जाता है। महारानी कैकेयी ने राजा दशरथ से राम को चौदह वर्ष तक वनवास एवं भरत का राज्याभिषेक वरदानस्वरूप मांग लिया। तत्पश्चात् वनगमन को उद्यत राम एवं उनके लिए प्राण निछावर करने वाले लक्ष्मण के बीच संवाद और अन्ततः राम, सीता एवं लक्ष्मण का वनगमन की घटना प्रथम अंक का प्रमुख कथानक है। प्रथम अंक का प्रारम्भ महाराज दशरथ की आज्ञा से राम के अभिषेक की तैयारियों से होता है, हर तरफ गाजे-बाजे और नगाड़ों के साथ मांगलिक कृत्य हो रहे हैं। प्रजा अत्यन्त प्रसन्न है, तभी अकस्मात् मांगलिक कृत्य रुक जाता है। सखियों संग हास-परिहास में एक वल्कल वस्त्र धारण की हुई है सीता को चेटी से सूचना मिलती है कि राम का अभिषेक रुक गया है, क्योंकि महारानी कैकेयी ने अपने पुत्र भरत के लिये राज्य पद एवं राम के लिये चौदह वर्ष का वन वरदान स्वरुप मांग लिया है। जिसे सुनकर महाराज दशरथ मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तदनन्तर राम सीता के पास पहुंचते हैं और इस समाचार की पुष्टि करते हैं, तभी अत्यन्त क्रोधित अवस्था में लक्ष्मण भी वहाँ पहुचते हैं और कहते हैं कि मैं इस संसार को स्त्री-विहीन कर दूंगा क्योंकि इस सम्पूर्ण घटना के पीछे एक स्त्री कैकेयी का हाथ है। लक्ष्मण की बात सुनकर राम अत्यन्त उदारता के साथ उन्हें समझाते हैं और उनके क्रोध को शान्त करते हैं। राम सीता और लक्ष्मण को अपने अकेले वनगमन के निर्णय से अवगत कराते हैं। तत्पश्चात् सीता और लक्ष्मण भी राम के साथ वन जाने का निवेदन करते हैं। पहले राम उन्हें अनुमति नहीं देते हैं किन्तु राम को उन दोनों की याचना को

अन्ततः स्वीकार करना पड़ता है। प्रथम अंक का समापन राम, सीता और लक्ष्मण के वन की ओर प्रस्थान करने से होता है।

द्वितीय अंक– द्वितीय अंक में महामन्त्री सुमन्त्र का राम, सीता और लक्ष्मण के बिना ही अयोध्या लौटना तत्पश्चात् महाराज दशरथ का मूर्च्छित होना और अन्ततः पुत्रवियोग में उनका प्राणत्याग देना इत्यादि कथा का अतीव मार्मिक निरूपण किया गया है। राम सीता और लक्ष्मण के वन चले जाने के कारण सम्पूर्ण प्रजा दुःखी है। उन्हें ऐसा भान होता है कि राम के बिना अयोध्या जनविहीन हो गयी है। राम के वनगमन से सर्वाधिक दुःखी एवं विकल राजा दशरथ हैं। राम के वन जाते ही इसका निमित्त स्वतः को मानकर अयोध्या नरेश दशरथ समुद्रगृह में जाकर अधीर अवस्था में पड़े हैं। कौशल्या और सुमित्रा महाराज दशरथ को अनेक प्रकार से धैर्य धारण कराते हुए सान्त्वना दे रही हैं। राम, सीता और लक्ष्मण को वन छोड़ने महामन्त्री सुमन्त्र गए हुए हैं। महाराज दशरथ को अब भी यह विश्वास है कि सुमन्त्र उन्हें समझा-बुझाकर वापस ले आएंगे। किन्तु वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। सुमन्त्र वन से खाली हाथ लौट आते हैं। उन्हें देखकर महाराज दशरथ घोर निराशा में डूब जाते हैं और उनकी रही सही उम्मीद भी खत्म हो जाती है। वह चेतनाशून्य हो जाते हैं और होश में आने पर बारंबार राम, सीता और लक्ष्मण का कुशलक्षेम पूछते हैं। महामंत्री सुमन्त्र और महाराज दशरथ के बीच होने वाला यह वार्तालाप करुण रस का अति उन्नत निदर्शन है, जिसमें पुत्र-वियोग से शोकसन्तप्त एक पिता के विदीर्ण हृदय का अतिमार्मिक चित्रण किया गया है। दशरथ को अपनी मृत्यु का आभास होने लगता है और ऐसा भान होता है कि उन्हें अपने साथ ले जाने के लिये उनके पितर आ गये हैं। अन्ततः पुत्र वियोग के दारुण दुःख को सहने में असमर्थ अयोध्या नरेश दशरथ अपने प्राण त्याग देते हैं। दशरथ के प्राण-परित्याग के साथ ही द्वितीय अंक का समापन हो जाता है।

तृतीय अंक– तृतीय अंक में भरत का ननिहाल से लौटते समय मार्ग में अवस्थित देवकुल में स्थापित पिता दशरथ की प्रतिमा को देखकर सशंकित होना और पिता की मृत्यु का अनुमान लगाकर मूर्च्छित होना तथा राम को अयोध्या वापस लाने के लिए उनके पास मन्त्रियों सहित जाने की कथा वर्णित है। पिता की मृत्यु और राम के वनगमन के समय भरत अपने ननिहाल में थे। अयोध्या से बुलावा आने पर वह ननिहाल से अयोध्या वापस लौट रहे हैं। भरत अयोध्या के बाह्यक्षेत्र में अवस्थित प्रतिमागृह के पास विश्रामार्थ रुकते हैं। वहाँ का पुरोहित उन्हें इस प्रतिमागृह से परिचित कराते हुए यह बताता है कि यह इक्ष्वाकुवंशीय पूर्ववर्ती राजाओं का प्रतिमागृह है। तदनन्तर वह महाराज दिलीप, रघु एवं अज की यशोगाथा का वर्णन उनके सम्मुख करता है। इसके बाद भरत की दृष्टि सद्यः स्थापित महाराज दशरथ कि प्रतिमा पर पड़ती है, जिसे देखकर संशकित एवं आतंकित मन भरत अपने पिता दशरथ कि मृत्यु का अनुमान लगाकर मूर्च्छित हो जाते हैं। तभी उनकी माताओं का भी वहाँ प्रवेश होता है। जिनके स्नेह एवं ममतामयी स्पर्शमात्र से भरत की मूर्च्छा टूट जाती है। होश में आने पर भरत देवकुलिक से सम्पूर्ण वृत्तान्त से परिचित होते हैं। उन्हें यह भी पता चलता है कि सारे अनिष्ट एवं अनर्थ की जड़ उनकी माता कैकेयी ही हैं। वे अपनी माता की कठोर शब्दों में निन्दा करते हैं। पश्चात् अयोध्या पहुँचने पर वशिष्ठादि पुरोहित भरत के सम्मुख उनके अभिषेक का प्रस्ताव रखते हैं, जिन्हें सादर अस्वीकार कर भरत मन्त्री सुमन्त्र एवं अन्य विश्वस्त सहयोगियों के साथ राम को अयोध्या वापस लाने के लिए वन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। तृतीय अंक भरत के भ्रातृवात्सल्य, त्याग एवं समर्पण का अति उत्कृष्ट उदाहारण है।

चतुर्थ अंक– चतुर्थ अंक में भरत मन्त्री सुमन्त्र इत्यादि के साथ वन में राम से भेंट करते हैं और उनसे अयोध्या वापस लौटने की याचना करते हैं। किन्तु राम उन्हें समझा-बुझाकर वापस भेजना चाहते हैं। अन्ततः बड़े भाई की बातों का मान रखने के लिए भरत इस शर्त पर वापस लौटने को तैयार हो जाते हैं कि वन से वापस अयोध्या आने पर राम अपना राजसिंहासन स्वीकार कर लेंगे। चतुर्थ अंक के प्राम्भ में भरत महामन्त्री सुमन्त्र के रथ पर आरूढ़ होकर अन्य विश्वस्त अनुचरों के साथ दण्डक वन में विराजमान राम के पास पहुँचते हैं। अश्रुपूरित नेत्रों वाले भरत को देखकर राम भी भावविह्वल हो उठते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता के सम्मुख भरत अपनी माता कैकेयी के कृत्य की भर्त्सना करते हैं और उनसे अयोध्या वापस लौटने का आग्रह करते हैं। राम भरत को समझाते हुए कहते हैं कि उन्होंने पिता के प्रण को पूर्ण करने का निश्चय किया है। तब भरत बड़े भाई राम से उन्हें भी सीता और लक्ष्मण के साथ वन में रहने की अनुमति प्रदान करने की याचना करते हैं। राम भरत की मनोदशा को भली-भाँति समझकर उन्हें उनके प्रजा एवं अन्यजनों के प्रति कर्तव्यबोध से अवगत कराते हैं। अन्ततः राम के समझाने पर भरत इस शर्त के साथ अयोध्या वापस लौटने पर सहमत होते हैं कि चौदह वर्ष पश्चात् वन से अयोध्या लौटते ही राम अपना राज्य स्वीकार कर लेंगे और इन चौदह वर्षों में शासन-संचालन हेतु उन्हें अपनी चरणपादुका प्रदान करेंगे। राम की स्वीकारोक्ति के पश्चात् भरत सुमन्त्र तथा अन्य प्रियजनों के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी के साथ चतुर्थ अंक का समापन हो जाता है।

पंचम अंक– पंचम अंक में कपटी रावण अपनी बहन शूर्पणखा के नाक काटने एवं अपने भाईयों खर-दूषण के वध का प्रतिशोध लेने के लिए छल से सीता का हरण कर लेता है। पंचम अंक के प्रारम्भ में राम पिता दशरथ का वार्षिक श्राद्ध करने के लिये विचार निमग्न हैं। सीता उन्हें धैर्य धारण कराते हुए कहती हैं कि उनके पिता का श्राद्ध कर्म अयोध्याधिपति भरत पूरे विधि-विधान के साथ करेंगे। तभी अतिथि रूप में कपट वेशधारी रावण का आगमन होता है। संन्यासी-वेश में रावण को देखकर राम उसका सम्मान करते हैं। परिव्राजक वेशधारी रावण राम से स्वर्ण मृग के पिण्डदान से पितृश्राद्ध कराने की इच्छा अभिव्यक्त करता है। तभी स्वर्णमृग के वेश में मारीच वहाँ प्रकट होता है। लक्ष्मण किसी कार्यवशात् वहाँ उपस्थित नहीं हैं। अतः राम स्वतः इस मृग को पकड़ने चले जाते हैं। सीता को अकेली पाकर रावण अपने वास्तविक स्वरूप में आकर उनका अपहरण कर लेता है। सीता करुण-क्रन्दन करती है, जिसे सुनकर गृद्धराज जटायु उन्हें बचाने आते हैं। महाकवि भास ने पांचवें अंक में रामकथा से अपने नाटक में परिवर्तन लाकर सीता के ऊपर लगने वाले मृगलोभ के आक्षेप का पूर्णतः निराकरण कर दिया है।

षष्ठ अंक– षष्ठ अंक के प्रारम्भ में सीता को रावण के चंगुल से बचाने आए जटायु रावण से भयंकर युद्ध करते हैं और अन्ततः रावण के हाथों घायल होकर वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। रावण की मनसा पूर्ण होती है और वह सीता को लंका ले जाने में सफल हो जाता है। इसके बाद सीता की खोज करते हुए राम और लक्ष्मण को यह समग्र वृत्तान्त दो तपस्वी कुमार बताते हैं। तत्पश्चात् राम और सुग्रीव की मैत्री होती है और राम किष्किंधा में किंचित् कालावधि हेतु ठहरे हुए हैं। पुनश्च भरत राम की खोज-खबर लेने के लिए मन्त्रिवर सुमन्त्र को वन में भेजते हैं। वहाँ पहुँचकर सुमन्त्र सीताहरण के दुःखद समाचार से अवगत होते हैं। पश्चात् अयोध्या वापस लौटकर भरत से यथातथ्य निवेदन करते हैं। इसी समय कैकेयी महाराज दशरथ को मुनि से मिले

शाप से भरत को अवगत कराते हुए अपने ऊपर लगे दोषारोपण का निराकरण करती है। कैकेयी भरत को राम की मदद करने का आह्वान भी करती है। भरत अपने बड़े भाई राम की सहायता एवं रावण के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर राम के पास ससैन्य पहुंचने हेतु प्रस्थान करते हैं। इस अंक की कथा में कवि भास ने अपनी कल्पना से अनेक परिवर्तन कर दिये हैं, जिससे कैकेयी के ऊपर लगने वाला दोष निराकृत हो सके।

सप्तम अंक– सप्तम अंक में भरत के ससैन्य राम के सहयोगार्थ पहुंचने से पहले ही भरत को तपस्वी द्वारा रावण पर राम के विजय की सूचना मिलती है। साथ ही तपस्वी उन्हें यह भी सूचित करते हैं कि विभीषण का लंकाधिपति के रूप में अभिषेक करके राम तपोवन में पहुँच चुके हैं। दुष्ट दानव एवं क्रूर आततायी रावण के वध से जनमानस अत्यन्त प्रसन्न है। ऐसा शुभ-समाचार सुनकर प्रसन्न मन भरतादि वहाँ पहुँचकर राम से मिलते हैं और वहीं पर उनका अयोध्याधिपति के रूप में राज्याभिषेक करते हैं। माता कैकेयी भी अत्यन्त हर्षित हैं और अयोध्या पहुँचने पर राम के विधिवत् राज्याभिषेक की कामना करती हैं, जिसे राम सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। तदनन्तर सभी पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। यहीं पर यह नाटक भरतवाक्य के साथ समाप्त हो जाता है, जिसमें भास ने सभी के मङ्गल की कामना की है।

7.3.3 प्रथम अंक की कथा

प्रथम अङ्क का प्रारम्भ महाराज दशरथ की आज्ञा से राम के राज्याभिषेक के लिए की जाने वाली तैयारियों से होता है। सर्वत्र प्रसन्नता ही परिलक्षित हो रही है। राजा, प्रजा एवं आमन्त्रित अतिथि सभी अत्यन्त प्रसन्न हैं, राम के राज्याभिषेक की तैयारियों के देखकर। राजपुरोहित अभिषेक के लिए राजाज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं और तभी सहसा अभिषेक के बाजे एवं मङ्गलगान सब बन्द हो जाते हैं। अनिष्ट की आशंका से सीता का मन उद्वेलित है तभी चेटी के मुख से यह अशुभ समाचार मिलता है कि महारानी कैकेयी ने राजा दशरथ से राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास एवं अपने पुत्र भरत के लिए राज्यपद मांग लिया है। जिसे सुनकर महाराज दशरथ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं। इस अतीव अप्रिय समाचार को सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त क्रोधित हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को स्त्रीविहीन करने की इच्छा से अपना धनुष उठा लेते हैं क्योंकि सम्पूर्ण घटना के पीछे स्त्रीस्वरूपा कैकेयी का हाथ है। उद्वेलित एवं क्रोधित लक्ष्मण को राम किसी तरह समझा-बुझाकर शान्त करते हैं और अकेले ही वन की ओर प्रस्थान करने के लिए उद्यत होते हैं। तदनन्तर सीता और लक्ष्मण भी उन्हें अपने साथ ले चलने का अनुनय करते हैं। पश्चात् राम, सीता और लक्ष्मण वन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। प्रथम अंक वात्सल्य एवं करुणा का अभूतपूर्व सङ्गम है।

7.3.4 तृतीय अंक की कथा

तृतीय अंक के प्रारम्भ में भरत बुलावा पाकर अपने ननिहाल से अयोध्या की ओर लौट रहे हैं और नगरद्वार के बाहर मार्ग में अवस्थित देवकुल में अपने कुल के पूर्ववर्ती राजाओं के साथ पिता दशरथ की प्रतिमा को देखते हैं। प्रतिमा की घटना के कारण ही इस नाटक का नाम 'प्रतिमानाटक' रखा गया है। प्रतिमागृह में देवकुलिक उन्हें उनके पूर्वज राजाओं दिलीप, रघु, अज इत्यादि के जीवनचरित से अवगत कराते हैं। स्मारकगृह में अपने पिता की प्रतिमा देखकर भरत सशंकित हो उनकी मृत्यु का

अनुमान लगाकर मूर्च्छित हो जाते हैं। तत्पश्चात् अयोध्या पहुँचने से पहले भरत देवकुलिक से सम्पूर्ण वृत्तान्त से अवगत हो जाते हैं और इस सम्पूर्ण अनर्थ का कारण अपनी माता को जानकर वे अत्यन्त ग्लानि महसूस करते हैं। अयोध्या पहुँचकर भरत अपनी माता कैकेयी के ऊपर अत्यधिक क्रोध भी करते हैं, जिसे किसी तरह अन्य माताएं कौशल्या एवं सुमित्रा शान्त करती हैं। भरत अपने बड़े भाई राम से अत्यन्त आदर एवं अतीव प्रेम करते थे। वे अयोध्या पहुँचकर सद्यः राम को वापस लौटाने के लिए वृद्ध मन्त्री सुमन्त्र आदि को साथ लेकर वन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं।

7.3.5 प्रतिमानाटकम् की प्रमुख सूक्तियाँ

प्रतिमानाटक के प्रथम एवं तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियों इस प्रकार हैं –

i) अनुचरति शशाङ्क राहुदोषेऽपि तारा। (1/25)

ii) अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते।

iii) गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता। (3/16)

iv) गोपहीना यथा गावो विलयं यान्ति। (3/23)

v) निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च। (1/29)

vi) पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च। (1/25)

vii) पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव। (3/10)

viii) बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। (बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम) (1/5)

ix) भर्तृनाथा हि नार्यः। (1/25)

x) शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनः। (1/12)

xi) सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। (सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम) (1/4)

xii) सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते। (1/18)

xiii) सुलभापराधः परिजनो नाम। (सुलहावराहो परिअणो णाम) (1/4)

xiv) स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः। (1/5)

xv) हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः। (3/12)

बोध प्रश्न 2

1 अधोलिखित कथनों में सत्य (✓) /असत्य (×) कथन का निर्धारण कीजिए –

i) महाकवि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं – ( )

ii) कालिदास ने रघुवंश में भास का उल्लेख किया है – ( )

iii) ट्रावनकोर से भास की रचनाएं प्राप्त हुई थीं – ( )

iv) भास का कुल एवं गोत्र अद्यावधिपर्यन्त अनिश्चित हैं – ( )

v) भास के किसी भी नाटक में महाराज उदयन का वर्णन नहीं मिलता है – ( )

vi) राम कथाश्रित भास के नाटकों की संख्या दो है – ( )

vii) भास ने अपने बारे में स्वतः उल्लेख किया है – ( )

अभ्यास प्रश्न

i) प्रतिमानाटक का सम्पूर्ण कथानक अपने शब्दों में लिखिए।

7.4 प्रतिमानाटकम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

महाकवि भास विरचित प्रतिमानाटक के प्रमुख पात्रों में राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी इत्यादि समाहित हैं। सम्प्रति इनकी चारित्रिक विशेषताओं का निरूपण किया जा रहा है।

7.4.1 राम का चरित्र-चित्रण

राम 'प्रतिमानाटक' के प्रधान नायक हैं। शास्त्रीय दृष्टि से वह धीरोदात्त नायक की श्रेणी में आते हैं। धीरोदात्त नायक के सभी गुण राम में विद्यमान हैं। धीरोदात्त नायक का लक्षण दशरूपककार धनञ्जय ने इस प्रकार दिया है–

महासत्त्वो अतिगंभीरः क्षमावानविकत्थनः।

स्थिरोनिगूढ़ाहंकारो धीरोदात्तदृढव्रतः।।

अर्थात् जो शोकादि से अप्रभावित हो, अति गम्भीर स्वभाव वाला, दूसरे को क्षमा करने वाला, आत्मप्रशंसा न करने वाला, सुख-दुःख आदि सभी परिस्थितियों में स्थिर स्वभाव वाला, अहंकार भाव को दबाकर रखने वाला, धैर्य धारण करने वाला, कार्य में दृढ़ता रखने वाला नायक होता है, वह धीरोदात्त नायक होता है। ये सभी गुण राम में पूर्णतः निहित हैं। राज्याभिषेक के अत्यन्त निकट आकर राज्य प्राप्त न होने पर भी वे लेशमात्र दुःखी नहीं होते हैं। अपितु क्रुद्ध लक्ष्मण को शान्त करते हैं। स्वभावतः राम अत्यन्त **धीर-गम्भीर** हैं, इसीलिए माता-पिता, अनुजगण एवं प्रजाजन सभी उनसे अनुराग करते हैं। वे अत्यन्त **क्षमाशील** हैं। अपनी माता कैकेयी जिनके कारण राज्याभिषेक से वञ्चित होकर वह वनगमन हेतु विवश हो जाते हैं, उन्हें भी वे सहर्ष क्षमा कर देते हैं। **क्षमाशीलता** एवं **उदारता** उनके स्वभाव का अभिन्न अङ्ग है, जो वनगमन के पश्चात् भी पदे-पदे परिलक्षित होता है। वे आत्मप्रशंसाप्रिय भी नहीं हैं। पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए राज्य को ठुकराना वे एक पुत्र का धर्म समझते हैं– **स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः।** राम अत्यन्त **दृढ़निश्चयी** हैं। पिता की इच्छा का सम्मान करते हुए वे वनगमन का निश्चय कर लेते हैं। इसके बाद सभी के आग्रह को ठुकराकर वे पुनः अयोध्या आगमन के लिए कथमपि उद्यत नहीं होते हैं। पिता की मृत्यु एवं भरत का भ्रातृप्रेम भी उन्हें उनके निर्णय से विचलित नहीं कर पाता है। राम अद्वितीय शक्तिसम्पन्न होने पर भी अहङ्कार से सर्वथा रहित हैं। वानरराज सुग्रीव के बड़े भ्राता अपराजेय बालि एवं रावण जैसे दुर्दान्त दानव का वध उनके महान् पराक्रम का अभिद्योतक है। राम अत्यन्त **आज्ञाकारी एवं विनीत** हैं। पिता की इच्छा एवं माता कैकेयी के आदेश का अनुपालन करने के लिए वे हाथ में आए हुए राज्य को भी विनम्रतापूर्वक ठुकरा देते हैं। राम अत्यन्त **बुद्धिमान्** भी हैं। भरत को लौटाने के लिए उन्होंने अपने वात्सल्य का बड़े ही चतुरायी के साथ प्रयोग किया है। राम मातृ-पितृभक्त भी हैं। पिता के श्राद्धकर्म के लिए ही एक आदर्श पितृभक्त पुत्र की भाँति काञ्चनमृग को लाने के लिए प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार राम अनेकानेक सद्गुणों की प्रतिमूर्ति हैं। संक्षेप में राम एक आज्ञाकारी एवं विनीत पुत्र,

क्षमाशील एवं औदार्यगुणोपेत, दृढ़निश्चयी, आत्मश्लाघा-अहंकार-विरहित, भ्रातृस्नेहसंवलित, वीर एवं बुद्धिमान् पुरुष हैं।

7.4.2 सीता का चरित्र-चित्रण

सीता प्रतिमानाटक की प्रधान नायिका हैं। वह सुकोमल स्वभाव की **सहृदया नारी** हैं। प्रथम अंक में वल्कल वस्त्रों को देखकर चेटी एवं अवदातिका से उन वस्त्रों को धारण करने की अभिलाषा अभिव्यक्त करती है। यह उसकी स्वाभाविक सरलता का सूचक है। उसका हृदय अत्यन्त उदार है। वह अपनी परिचारिकाओं से भी अत्यन्त उदारता का व्यवहार करती है। उनसे हास-परिहास करते वक्त वह अपने आपको राजकुलवधू होने का आभास भी नहीं कराती है। यही नहीं, वन में वास करते हुए वह उदारता के कारण छोटे वृक्षों को स्वतः जल लाकर सींचती है। प्रस्तुत नाटक में सीता का चरित्र एक पतिपरायण **आदर्श भारतीय नारी** के रूप में चित्रित है। वह अपने पति राम के प्रत्येक सुख-दुःख में उनका साथ ठीक उसी प्रकार देती है, जैसे संकटग्रस्त चन्द्रमा की पत्नी तारा राहुग्रहणकाल में भी अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है–**अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा।** वस्तुतः सीता अपने पति राम की **सहधर्मिणी** एवं **सहचारिणी** हैं। वह अपने पति का साथ छाया की तरह कदापि नहीं छोड़ती है – **सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।** राम के वनगमन के समय भी वह राजवैभव का परित्याग कर उनके साथ जाती है। पति के साथ वन में निवासोत्पन्न दुःख भी उसे पति के बिना राजप्रासाद के वैभव से उत्कृष्ट एवं श्रेयस्कर लगता है –**तत् खलु मे प्रासादः।** सीता एक स्थिरचित्त **धैर्यशीला स्त्री** है। राम के राज्याभिषेक के समय वह न तो अत्यधिक प्रसन्न होती है और न ही वनगमन के समय अत्यन्त क्षुब्ध या व्यथित। वह एक **धर्मपरायण नारी** है। जो वन में एक आदर्श तपस्विनी की तरह अपना जीवन व्यतीत करती है। सीता स्त्रियोचित **ममतामयी नारी** है। भरत के वन में आकर राम से अयोध्या वापस लौटने का निवेदन करने के क्रम में उनके अश्रुपूरित नेत्रों को देखकर उसका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण हो कह उठता है – **अतिकरुण मन्त्रयते भरतः।** सीता के बहुविध गुणों के कारण ही महाराज दशरथ उसे अत्यन्त स्नेह करते हैं। वनगमन के पश्चात् राजा दशरथ की कामना है कि सीता सदैव सुरक्षित रहे। इसीलिए वे सीता का नाम राम एवं लक्ष्मण के मध्य में रखकर उच्चारित करते हैं, जिससे वह इन दोनों वीर योद्धाओं के बीच वन में भी किसी कष्ट या विपत्ति को न प्राप्त हो–

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।

बहुदोषाण्यरण्यानि, सनाथैषा भविष्यति।।

इस प्रकार सीता वस्तुतः अत्यन्त उदार, विशालहृदया, सुकोमलस्वभावोपेत एक पतिपरायण आदर्श भारतीय नारी है, जिसमें सर्वोत्तम अर्धाङ्गिनी के सभी गुण विद्यामान हैं। वह एक आदर्श पत्नी, पुत्रवधू, वात्सल्यपूर्ण उदारहृदया स्वाभिमानिनी नारी भी है।

7.4.3 भरत का चरित्र-चित्रण

भरत प्रतिमानाटक के अति प्रमुख पात्र हैं। भरत की सबसे बड़ी चारित्रिक विशेषता है, उनका **त्यागशील** होना। भरत **त्याग एवं तपस्या** की पराकाष्ठा हैं। राज्यसुख का उन्हें किंचित् भी लोभ नहीं है। जैसे ही उन्हें यह पता चलता है कि उनकी माता

कैकेयी के कारण अनेक अनिष्ट हो गए हैं और उनके बड़े भाई श्रीराम को वन जाना पड़ा, वे कठोर शब्दों में अपने माता के इस कृत्य की भर्त्सना करते हैं और एक क्षण व्यतीत किए बिना राम को वापस अयोध्या लौटाने के लिए वन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। उनका मन **निष्कपट** एवं **निश्छल** है। रामवनगमन का निमित्त स्वतः को मानकर उनका हृदय करुणा एवं विषाद से भर जाता है। वन पहुँचकर राम को देखते ही उनके आंखों से अश्रु की धारा प्रस्फुटित हो जाती है। यह उनके निश्छल एवं निष्कपट होने का परिचायक है। भरत का हृदय पितृ एवं भ्रातृस्नेह से परिपूर्ण है। पिता और बड़े भाई के बिना उन्हें राज्यसुख संवलित अयोध्या जाना ठीक उसी प्रकार निर्मूल व निरर्थक प्रतीत होता है, जैसे जल से रहित नदी की ओर प्यास से व्याकुल पुरुष का भागना निरर्थक होता है–

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।

पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव।।

भ्रातृश्रद्धा व **भ्रातृप्रेम** का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन भरत के चरित्र में दीखता है। वे अपने बड़े भैया राम को न केवल अत्यन्त प्रेम करते हैं, अपितु उनके प्रति अगाध श्रद्धा भी रखते हैं। वह मन, वचन एवं कर्म से श्री राम के **अनन्य भक्त** एवं **परम उपासक** थे। राम के प्रति उनकी अनन्य भक्तिभावना की सूचक चतुर्थ अङ्क में लक्ष्मण की यह स्वीकारोक्ति है –

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।

संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति।।

भरत का हृदय भ्रातृप्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत है। इसका प्रमाण है तृतीय अङ्क में सुमन्त्र के सम्मुख भरत द्वारा अभिव्यक्त उनकी मनोभवनाएं जिसमें वह कहते हैं कि मैं वहीं रहना चाहता हूँ जहाँ रामप्रिय लक्ष्मण रहता है। वस्तुतः वही अयोध्या है, जहाँ राम का निवास है –

तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः।

नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ।।

अस्तु, भरत एक भ्रातृवत्सल, त्यागवान्, निष्कपट एवं निश्छल उदार पुरुष हैं। न्यायप्रियता एवं त्यागशीलता की पराकाष्ठा भी भरत के चरित्र में दिखलाई पड़ती है।

7.4.4 लक्ष्मण का चरित्र-चित्रण

प्रतिमानाटक में भास ने लक्ष्मण के चरित्र में रामायण की अपेक्षा यत्किञ्चित् परिवर्तन कर दिया है। रामायण में वर्णित लक्ष्मण जहाँ अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के भ्रातृप्रेमी, वीर एवं उत्साही युवा हैं, वहीं प्रतिमानाटक का लक्ष्मण अपेक्षाकृत थोड़ा सरल, सहज, सन्तुलित किन्तु **स्वाभावतः उग्र** है। रामायण की तरह ही प्रतिमानाटक में लक्ष्मण **भ्रातृप्रेमी** एवं अतीव **आज्ञाकारी** हैं। राम की आज्ञा के बिना लक्ष्मण कुछ भी नहीं करते हैं। कैकेयी-वृत्तान्त से आहत होकर भी राम की आज्ञा न मिलने से धनुष पर बाण नहीं चढ़ाते हैं। यह उनका बड़े भाई राम के प्रति प्रेम ही है, जो उन्हें माता कैकेयी के प्रति भी क्रोध करने के लिए विवश कर देता है। भरत की तरह लक्ष्मण भी **त्यागवान् पुरुष** हैं। राम के साथ वन जाने के लिए वे अपनी पत्नी एवं माता को भी

चौदह वर्ष के लिए छोड़कर चल देते हैं। यह उनके त्यागशीलता का सूचक है। लक्ष्मण एक **आदर्श अनुज** हैं। वह राम की सेवा एवं शुश्रूषा करना अपना परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं। यही कारण है कि राम के वनगमन का निश्चय करते ही वह बिना देर किए स्वयं भी वनगमन के लिए उद्यत हो जाते हैं। वस्तुतः लक्ष्मण **सर्वोत्कृष्ट सेवक** एवं **उत्कृष्ट उपासक** हैं। महाराज दशरथ भी लक्ष्मण के सेवाभाव से प्रभावित होकर कहते हैं कि लक्ष्मण निःसन्देह **एक उत्तम पुत्र** है जो दिन-रात हर परिस्थिति में अपने बड़े भ्राता रघुकुल शिरोमणि श्रीराम का अनुकरण कर रहा है–

तवैव पुत्रो सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने।

रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते।।

लक्ष्मण अत्यन्त **वीर योद्धा** भी हैं। वन में लक्ष्मण की वीरता के अनेक प्रमाण परिलक्षित होते हैं। इस प्रकार लक्ष्मण एक आदर्श अनुज, वीर एवं उत्साही युवा, भ्रातृप्रेमी त्यागवान् पुरुष है, जो अपने बड़े भैया राम से सर्वाधिक प्रेम करता है। यही कारण है कि आज भी राम-लक्ष्मण की आदर्श भ्रातृजोड़ी का दृष्टान्त दिया जाता है।

7.4.5 दशरथ का चरित्र-चित्रण

राजा दशरथ एक **प्रतिज्ञापालक राजा** हैं। राम उन्हें प्राणों से प्रिय हैं। महारानी कैकेयी जब उनसे राम के वनगमन का वर मांग लेती हैं, तब भी वह अपनी वचनबद्धता के कारण उसे सद्यः मना नहीं कर पाते हैं। वचन एवं उसे पूरा करने की प्रतिज्ञाबद्ध असहाय महाराज दशरथ प्राणों को त्यागकर भी अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करना चाहते हैं। दशरथ के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है, उनका **स्नेहसंवलित पिता** होना। वह अपने पुत्रों से बहुत प्रेम करते हैं। पुत्रों में भी सबसे बड़े पुत्र राम उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं। द्वितीय अङ्क में वन गए हुए राम, सीता एवं लक्ष्मण को अत्यन्त आतुरता एवं विह्वलता के साथ स्मरण करते हुए कहते हैं कि हे संसार की आंखों के प्यारे राम! हाय सुन्दर अङ्गों वाले लक्ष्मण! हे सुचरित्रशीला तथा पतिपरायणा सीता! बड़े कष्ट की बात है कि सभी वन को चले गए –

हा वत्स! राम! जगतां नयनाभिराम!, हा वत्स! लक्ष्मण! सलक्षणसर्वगात्र!।

हा साध्वि! मैथिलि! पतिस्थितचित्तवृत्ते!, हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः! ।।

द्वितीय अङ्क में पुत्रवियोग से जन्य शोक से सन्तप्त राजा दशरथ असहनीय पीड़ा का अनुभव करते हुए कहते हैं कि अग्नि के समान पुत्र-विरह के इस दारुण दुःख को न तो मैं सहन कर सकता हूँ और न ही इसे दूर कर सकता हूँ–

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम्।

नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः।।

सुमन्त्र द्वारा राम को वापस न ला पाने पर वह अत्यधिक व्यथित एवं चेतनाशून्य हो जाते हैं। अत्यधिक पुत्रस्नेह ही अन्ततः उनके प्राणपरित्याग का कारण भी बनता है। इस प्रकार महाराज दशरथ एक प्रतिज्ञापालक, प्रजाप्रेमी एवं पुत्रवात्सल्ययुक्त आदर्श पिता हैं।

7.4.6 कैकेयी का चरित्र-चित्रण

कैकेयी प्रतिमानाटक की प्रमुख स्त्रीपात्र है। प्रस्तुत नाटक के प्रायः सभी अङ्कों में कैकेयी का नामोल्लेख अवश्य प्राप्त होता है। वस्तुतः इस नाटक के सम्पूर्ण कथानक का आधार कैकेयी द्वारा मांगा गया वरदान ही है। रामकथा में प्राप्त कैकेयी के चरित्र में महाकवि भास ने अपनी कल्पना एवं लेखनशक्ति से यथोचित परिवर्तन कर दिया है। रामकथा की कैकेयी जहाँ विशुद्ध पुत्रमोह में अनिष्ट का कारण बन जाती है, वहीं प्रतिमानाटक में कैकेयी मुनिशाप की सत्यता सुनिश्चित करने के लिए ही भरत के लिए राजपद एवं राम का वनवास रूपी वर माँगती है। इस प्रकार नाटककार भास ने कैकेयी के चरित्र को परिमार्जित कर उसमें नूतनता का संचार कर दिया है। यही कारण है कि प्रतिमानाटक के अतिरिक्त सर्वत्र कैकेयी को दोषी माना गया है, जबकि भासकृत प्रतिमानाटक में उसे सर्वथा दोषरहित एवं राजा को शाप से मुक्तिप्रदातृ के रूप में चित्रित किया गया है। षष्ठ अंक में भरत की उलाहना से आहत कैकेयी ने भरत के सम्मुख मन्त्री सुमन्त्र के श्रीमुख से मुनिश्राप से सम्बन्धित वृत्तान्त का वर्णन करवाया है। सुमन्त्र उन्हें अन्धमुनि एवं उनके पुत्र श्रवण कुमार का सकल वृत्तान्त आद्योपान्त सुनाते हैं, जिससे भरत भी इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि उनके पिता को पुत्र-वियोग में प्राणत्याग करने का श्राप मिला हुआ था। अन्त में कैकेयी भरत से कहती है कि मुनिश्राप से मुक्ति के लिए ही उसने महाराज दशरथ से रामवनगमन एवं तज्जन्य दुःख महाराज के लिए मांगा था, न कि राज्यसुख के लोभ से –

जात! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यसुखलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति।

7.4.7 कौशल्या का चरित्र-चित्रण

प्रतिमानाटक में कौशल्या का चरित्र एक **ममतामयी माता** के रूप में चित्रित है। वह जितना स्नेह अपने पुत्र राम से करती है, उतना ही प्रेम भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न से भी करती है। कौशल्या का चरित्र अन्य माताओं की अपेक्षा ज्यादा वात्सल्यपूर्ण है। ननिहाल से लौट रहे भरत के प्रतिमागृह में पिता की मृत्यु से मूर्च्छित हो जाने पर सबसे पहले वह ही उनके सिर पर अपने ममतामयी हाथों से स्पर्श कर उनको पुनः चैतन्यता प्रदान करती है। वह एक **उदारमना माता एवं जेठानी** है। अपने पुत्र को वन देने वाली कैकेयी से न तो वह क्षुब्ध होती है और न ही भरत के प्रति उसके स्नेह में कोई कमी आती है। वह एक **आदर्श पत्नी** है। अपने पुत्र को वन देने वाले पति दशरथ के प्रति उसके मन में किंचित् भी आवेश नहीं आता है, अपितु अन्तिम समय तक वह उनके साथ रहकर उन्हें सान्त्वना प्रदान करने का प्रयास ही करती रहती है। वस्तुतः कौशल्या एक आदर्श माता, उदारहृदया, क्षमाशीला, पतिव्रता नारी है जो विषम परिस्थिति में भी विचलित नहीं होती है।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) भास के नाटकों की संख्या .....है।

ii) प्रतिमानाटक में कुल .....अंक हैं।

iii) राम शास्त्रीय दृष्टि से .....नायक हैं।

iv) सीता का हरण .....वन में हुआ था।

v) राम से स्वर्ण मृग लाने की लालसा.....ने की थी।

vi) प्रतिमागृह में..... की मूर्ति सद्यः स्थापित की गयी थी।

vii) भरत को .....राम के विजय की सूचना देता है।

viii) दण्डक वन के पश्चात् राम सुग्रीव के साथ .....रहते हैं।

ix) प्रतिमा की घटना .....अंक में वर्णित है।

x) प्रतिमागृह में भरत को .....इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं से अवगत कराता है।

अभ्यास प्रश्न

i) प्रतिमानाटक के आधार पर राम का चरित्र-चित्रण कीजिए।

ii) सीता की चारित्रिक विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

7.5 सारांश

सात अङ्कों में निबद्ध भास द्वारा रचित **'प्रतिमानाटकम्'** नाटकीय दृष्टि से एक उत्कृष्ट नाटक है। सात अङ्कों में उपनिबद्ध प्रस्तुत नाटक राम के यौवराज्याभिषेक के प्रसङ्ग से प्रारम्भ होता है और उनके चौदह वर्ष वन में रहकर रावणादि राक्षसों के वधोपरान्त राम के तपोवन में ही राज्याभिषेक के बाद पुष्पक विमान से अयोध्या की ओर प्रस्थान करने के साथ ही समाप्त हो जाता है। रामकथाश्रित प्रस्तुत नाटक में कुछ बदलाव कर महाकवि भास ने न केवल इसमें मौलिकता का संचार कर दिया है अपितु रामाकथागत कई आक्षेपों को भी निराकृत कर दिया है। प्रतिमानाटक की भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। इसमें संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का सुव्यवस्थित संयोजन मिलता है। भास ने प्रस्तुत नाटक में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का समुचित समायोजन किया है। अन्तः एवं बाह्य प्रकृति का सुन्दर निदर्शन भी इस नाटक में परिलक्षित होता है। प्रतिमानाटक में भास की नाट्यकला का चमत्कृत स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। इसमें रसास्वादन एवं भावाभिव्यञ्जना भी उत्कृष्ट स्वरूप में दिखलाई पड़ती है। रामकथाश्रित प्रतिमानाटक की सबसे बड़ी विशेषता इसकी मौलिक उद्भावनाएं हैं। इसमें भास ने प्रचलित रामचरित से भिन्न कुछ ऐसी मौलिकताओं की उपस्थापना की है, जिससे कैकेयी के व्यक्तित्त्व पर लगे दोष का परिहार हो जाता है। सीता के ऊपर अपने हरण का स्वतः कारण बनने का सदैव आक्षेप लगता रहा है। यतः उन्होंने राम से स्वर्णमृग लाने की लालसा की थी किन्तु प्रतिमानाटक में इस घटना को भी परिवर्तित कर सीता पर लगने वाले उक्त आक्षेप का भी निराकरण कर दिया गया है क्योंकि इस नाटक में राम सीता की अभिलाषा से काञ्चनमृग लाने नहीं जाते हैं, अपितु पिता की श्राद्धकामना ही इसमें बलवती कारण बनती है। इस प्रकार रामकथा को आधार बनाकर भी प्रतिमानाटक को कविवर भास ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं से सर्वथा नूतनता प्रदानकर एक उत्कृष्ट नाटक के रूप से सुस्थापित कर दिया है।

7.6 शब्दावली

अद्यावधि – आज तक

विदीर्ण – टूटा हुआ

वृत्तान्त – विवरण

आरूढ – चढकर

वात्सल्य – प्रेम

लालसा – इच्छा

7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

i) प्रतिमानाटकम् (अनु.) डॉ. श्री कृष्ण ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर।

ii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) डॉ. सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006

iii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

iv) प्रतिमानाटकम् (सम्पा.) श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2016

v) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (ले.) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018

7.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) (ख) भास को, (ii) (ग) जयदेव की, (iii) (घ) चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व, (iv) (ग) उत्तर भारत के, (v) (घ) टी. गणपति शास्त्री ने, (vi) (ख) भास को, (vii) (घ) 13

बोध प्रश्न 2

(i) सत्य, (ii) असत्य, (iii) सत्य, (iv) सत्य, (v) असत्य, (vi) सत्य, (vii) असत्य ।

बोध प्रश्न 3

(i) 13, (ii) 7, (iii) धीरोदात्त, (iv) दण्डक, (v) रावण, (vi) दशरथ, (vii) तपस्वी, (viii) किष्किन्धा, (ix) तृतीय, (x) देवकुलिक।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 8 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – श्लोक 1-15

8.3 सारांश

8.4 शब्दावली

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि भास की नाट्य चातुरी को जान सकेंगे।
- नाटकीय संघटनाओं की संयोजना में भास के कौशल को जान सकेंगे।
- राम की उदारता को पढ़कर उनके चरित्र का अनुकरण कर सकेंगे।
- सीता के वार्तालापों से पारिवारिक सामंजस्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रसन्नता के बाद तुरन्त उपस्थित हुए अवसाद के समय धैर्य धारण करने की योग्यता प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

प्रतिमानाटक महाकवि भास के महत्त्वपूर्ण नाटकों में गिना जाता है। यह सात अंकों में निबद्ध नाटक है। श्रीराम जी का युवराज पद पर अभिषेक के प्रसंग को लेकर इसकी नाट्य रचना की गई है। प्रथम अंक राम के राज्याभिषेक और वनगमन पर आधारित है। महाकवि भास ने प्रथम अंक में राम के वनगमन की कथा का मनोहारी रूपान्तरण किया है। आपके अध्ययन के सौकर्य को देखते हुए प्रथम अंक को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में आप राम के राज्याभिषेक की तैयारी से लेकर राम द्वारा कैकेयी को निर्दोष निरूपित करने तक का वृत्तान्त पढ़ेंगे। नाटक के प्रारम्भ में प्रथमतः सूत्रधार प्रवेश करके नान्दी पाठ करता है। तदनन्तर वह सूचना देता है कि महाराज दशरथ राम का राज्याभिषेक करने के लिए तत्पर हैं और राज्याभिषेक की समस्त तैयारियाँ पूरी कर ली गई हैं। अभिषेक प्रारम्भ होता ही है कि मन्थरा आकर महाराज दशरथ के कान में कुछ कहती है और अभिषेक रोक दिया जाता है। तदनन्तर राम यह कहते हुए प्रसन्नता व्यक्त करते हैं कि मेरा बालभाव भी सुरक्षित रहा और मेरे राज्याभिषेक के बाद दशरथ वनगमन का अवसर भी नहीं आया। राम और सीता के मध्य वार्तालाप चलता है और वो बताते हैं कि किस प्रकार से राज्याभिषेक का कार्य पूर्ण नहीं हो पाया। इस समय राम कैकेयी को निर्दोष निरूपित करते हुए कहते हैं कि जिसका मुझ जैसा पुत्र है तथा इन्द्र के समान जिनके पति हैं वह इस संसार के किस

फल को पाने के लिए अकार्य करेगी? वास्तव में तो अयोध्या का राज्य माता कैकेयी के विवाह के समय दशरथ द्वारा शुल्क के रूप में कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्र को ही दे दिया गया था। हम लोग तो भाई भरत के राज्य का अपहरण ही कर रहे थे।

8.2 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – श्लोक 1-15

मूलपाठ –

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः – सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ।।1।।

अन्वयः – यः देव्या रावणार्यप्रतिमः विभीषणात्मा च स सीताभवः सुमन्त्र तुष्टः सहलक्ष्मणः भरतः च सुग्रीवरामः अनुसर्गं पातु ।।1।।

व्याख्या – सीताभवः इतिकृत्यः देव्या दीव्यतीति देवी तया, सीतया हेतुभूतया रावणारिः रावयति रोदयति साधुजनान् कष्टदानकारणेनेति रावणः तदाख्यराक्षस विशेषः तस्य अरिः शत्रुः सीताहरणकारणेनैव रावणः श्रीभगवतः रामचन्द्रस्य शत्रुरभूदिति रावणारिः–रावणशत्रुः अप्रतिमः नास्ति प्रतिमा उपमानं यस्य सः अप्रतिमः अद्वितीयवीर इत्यर्थः। विभीषणात्मा विभीषणः रावणानुजः सः आत्मा आत्मीयो यस्य सः विभीषणात्मा। विभीषणो हि समदुःखसुखः रामस्य आत्मीया सखा। सः सीताभवः सीताजनकदुहिता तस्या भवः क्षेमः क्षेमकारणम्। कार्य कारणयोरभेदादीदृक्प्रयोगः सम्भवति यद्वा सीताभवः क्षेमः यस्मादिति बहुव्रीहिः सुमन्त्रतुष्टः–सुमन्त्रः = शोभनो मन्त्रः तेन तुष्टः = मुदितः नीत्याचरणेन सन्तुष्टः यद्वा सुमन्त्रनामकेन पितृसारथिभूतेन मन्त्रिणां वा तुष्टः = प्रीतः। सहलक्ष्मणः लक्ष्मणेन सहितः वर्तमानः लक्ष्मणसन्निधानः इति यावद् यद्वा सह भ्रातुरर्थे वनवास – तत्परिचर्यात्प्रेयसीहरणादिनानाक्लेशानां सोढा लक्ष्मणः तदभिधानो भ्राता यस्य सः। भरतः भरतीति भरस्तं तनोतीति भरतः = जगद्रक्षक इत्यर्थः। यद्वा लोकस्य भरणात् रक्षणाद् धारणात् पालनाच्च भरतः। सुग्रीवरामः सुष्ठु ग्रीवा यस्य स सुग्रीवः कम्बुकण्ठ इत्यर्थः स चासौ रामः सर्वत्र रमणाद्रामः अनुसर्गम् सर्गे सर्गे जन्मनि जन्मनि प्रतिप्रादुर्भावमित्यर्थः। वीप्सायामव्ययीभावः। पातु रक्षतु युष्मान् अस्मानिति शेषः। अथ चात्र सीता-राम-सुमन्त्र-सुग्रीव-लक्ष्मण-रावण-विभीषण-भरताभिधानानि नाटकीयानि प्रमुखपात्राणि मुद्रालङ्कार द्वारोपनिबद्धानि। अप्रतिमघटक प्रतिम शब्दश्च एकदेशविकृतन्यायमहिम्ना प्रतिमा शब्दं स्मारयन् प्रतिमानाटकस्य नामधेयम् तद् बीजभूतं दशरथप्रतिमावृत्तं चावेदयति अत्र द्वादशपदा नान्दी सामान्य मङ्गलरूपेणोक्ता। यथोक्तम्– पदैर्दशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत। अत्र पदपदम् न श्लोक पादरूपम् किन्तु सुबन्ततिङन्तरूपपदभाजम्। तच्च श्लोके सीताभवः इत्यादि पृथक् पदानि कृत्वा गणनया द्वादशसंख्यानि भवन्ति। मुद्रालङ्कारः। 'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थ परैः पदैः' इति तल्लक्षणम्। सीताभव इत्यत्र हेतुहेतुमतोरभेदवर्णनात् हेत्वलङ्कारः – 'हेतोर्हेतुमता साधर्म्यभेदो यत्र वण्यते' इति तल्लक्षणम्। विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि। 'उक्तैविशेषणः साभिप्रायैः परिकरो मतः' इति तल्लक्षणम्–उपजातिश्छन्दः–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति लक्षणात् ।।1।।

अनुवाद – (नान्दी के अव्यवहितोत्तरकाल में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार – जो देवी सीता के हरण किये जाने के कारण समस्त जगत् को रुलाने वाले रावण के शत्रु हैं, पराक्रम में अप्रमेय, रावणानुज विभीषण जिनका आत्मीय है अथवा सीता के साथ जिन्होंने रावण को मारकर लोक को आनन्दित किया। सीता का क्षेम सम्पादन करने वाले जो सुमन्त्र नामक अपने लापता पिता के सारथी से अथवा सुन्दर मन्त्रणा से सन्तुष्ट हैं। लक्ष्मण जिनके सन्निधान में हैं अथवा जो उत्तम लक्षण से युक्त हैं। जो इस संसार के भरण-पोषण करने से भरतस्वरूप हैं ऐसे वानरराज सुग्रीव से युक्त अथवा मनोहर ग्रीवा वाले सर्वत्र रमणकर्ता भगवान् श्रीराम हम सभी नटों की एवं आप सभी सामाजिकों की जन्म-जन्म में रक्षा करें।

शब्दार्थ – यः = जो, देव्या = देवी सीता के कारण, रावणार्यप्रतिमः = रावण के शत्रु तथा अद्वितीय वीर, विभीषणात्मा = शत्रुओं के लिए भयंकर, सीताभवः = सीता को सुख देने वाला, सुमन्त्रतुष्टः = अच्छी मन्त्रणा से सन्तुष्ट होने वाले, सहलक्ष्मणः भरतश्च = लक्ष्मण तथा भरत के साथ, सुग्रीवरामः = सुन्दर ग्रीवा वाले भगवान् श्रीराम, अनुसर्गम् = सदैव, पातु = सबकी रक्षा करें।

टिप्पणी – रावणारिः = रावणस्य अरिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अप्रतिमः = न अस्ति प्रतिमः उपमान यस्य सः (बहुव्रीहि समास), विभीषणात्मा = विभीषणः आत्मा यस्य सः (बहुव्रीहि समास), सुमन्त्रतुष्टः = सुमन्त्रेण तुष्टः (तृतीया तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत नान्दी पद्य में 'अप्रतिमः' शब्द का प्रयोग करके कवि ने प्रतिमानाटक के नाम की ओर भी संकेत किया है। यह शब्द तृतीय अंक में प्रस्तुत प्रतिमाओं के दृश्य की ओर संकेत कर रहा है, इसलिए इसमें मुद्रा अलंकार है। 'सीताभवः' शब्द में हेतु और हेतुमान में अभेद वर्णित होने के कारण हेतु अलंकार भी है। 'विभीषणात्मा' इत्यादि पदों में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग है, अतः परिकर अलंकार की भी प्रतीति हो रही है।

इस श्लोक में राम के विशेषण के रूप में प्रयुक्त शब्द राम की विशेषताएं तो बताते ही हैं। साथ ही साथ नाटक के मुख्य पात्रों से भी पाठकों को अवगत कराते हैं।

प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।''** जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से उपलब्ध हों, वहाँ उपजाति छन्द होता है।

मूलपाठ – (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये! इतस्तावत्।

(प्रविश्य)

नटी – आर्य! इयमस्मि। (अय्य! इअम्हि।)

सूत्रधारः – आर्ये! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत्।

नटी – आर्य! तथा (अय्य! तह।) (गायति)

सूत्रधारः – अस्मिन् हि काले,

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।

अन्वयः – काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति।

व्याख्या – काशांशुकवासिनी = काशपुष्पप्रकाशा जले वसतीति काशांशुकवासिनी, सुसंहृष्टा = नितरां मुदिता सती, हंसी = वराटा, पुलिनेषु नदीसैकतेषु, चरति = यथेच्छमितस्ततो विहरति।। 2।।

अनुवाद –

(नेपथ्य की ओर देखकर)

आर्ये। इधर आओ।

(प्रवेश कर)

नटी – आर्य! यह लो मैं आ गई।

सूत्रधार – आर्ये! इस शरद् ऋतु के सम्बन्ध में कुछ गान सुनाओ।

नटी – आर्य! मुझे आपकी आशा स्वीकार है अभी गाती हूँ।

सूत्रधार – इस समय पुष्पित काशसमूहों वाले नदी के बालुकामय तट पर हंसिनी परम प्रसन्न हो इस प्रकार विहार कर रही है।। 2।।

मूलपाठ – **(नेपथ्ये)**

आर्य! आर्य! (अय्य! अय्य!)

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः – भवतु, विज्ञातम्।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ।।2।।

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना।

अन्वयः – मुदिता त्वरिता प्रतिहाररक्षी इव नरेन्द्रभवने (चरति)।।2।।

व्याख्या – मुदिता = मोदमाना रामराज्याभिषेकप्रसङ्गेन त्वरिता = स्वकार्ये ससंभ्रमम् संलग्ना, प्रतिहाररक्षी–प्रतिहारं = द्वारं रक्षति सा या। नरेन्द्रभवने नरेन्द्रस्य = नृपतेः दशरथस्य भवने = प्रासादे यथा चरति तथा हंसी अपि चरतीति पूर्वेणान्वयः। अत्र पूर्णोपमालङ्कारः। उपमानः साधर्म्यस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् इति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः। श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोरिति लक्षणात्। निष्क्रान्ताविति = रङ्गस्थलाद् गताविव्यर्थः।

अनुवाद – (नेपथ्य में)

आर्य! आर्य!

(सुनकर)

सूत्रधार – अच्छा, जान लिया। जिस प्रकार दशरथ के राजमहल में रामराज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न हुई द्वारपालिका श्वेत वस्त्र धारण कर शीघ्रता से इतस्ततः संचरण कर रही हैं।।2।।

शब्दार्थ – चरति = विचरण कर रही है, पुलिनेषु = तटों पर, काशांशुकवासिनी = काश के फूलों के समान वस्त्रों को धारण करने वाली, सुसंहृष्टा = अतीव प्रसन्न, मुदिता = प्रसन्न, त्वरिता = जल्दी-जल्दी अपना कार्य करने में तत्पर, प्रतिहाररक्षी =

द्वार में रहने वाली सेविका, नरेन्द्रभवने = महाराज दशरथ के महल में, चरति = विचरण कर रही है।

टिप्पणी – प्रतिहारक्षी = प्रतिहारं रक्षति स्त्री इति प्रतिहारक्षी (उपपद तत्पुरुष), नरेन्द्रभवने = नरेन्द्रस्य भवने (षष्ठी तत्पुरुष)।

प्रस्तुत श्लोक में हंसीव उपमेय, प्रतिहाररक्षी उपमान तथा इव उपमा वाचक शब्द है। उपमेय का उपमान से साम्य वर्णित होने के कारण उपमा अलंकार है।

प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है।

(तदनन्तर दोनों का रङ्गस्थान से प्रस्थान)

स्थापना समाप्त।

मूलपाठ – **(प्रविश्य)**

प्रतिहारी – आर्य, क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः। (अय्य! को इह कञ्चईआणं सण्णिहिदो।)

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः – भवति! अयमस्मि। किं क्रियताम् ?

प्रतीहारी – आर्य! महाराजो देवासुरसङ्ग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति– शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेकसम्भारा आनीयन्तामिति। (अय्य ! महाराओ देवासुरसंगामेसु अप्पडिहदमहारहो दसरहो आणवेदि–सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जपहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति।)

अनुवाद – (प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी – आर्य! कञ्चुकियों में यहाँ कौन है?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी – पूज्ये! यहाँ पर मैं हूँ। कहिये क्या करना है?

प्रतिहारी – आर्य! देवासुरसंग्राम में भी जिनके रथ का वेग किसी के द्वारा अवरुद्ध नहीं किया गया उन महाराज दशरथ की आज्ञा है कि शीघ्र ही श्रीराम के युवराजपद के प्रभुत्वशक्ति को प्रत्यक्षरूप से प्रकट करने वाले छत्र-चामरादि विशेष राजचिह्न एवं अभिषेक के लिये सरित्समुद्रादि तीर्थों के जल तथा सर्वोषधियाँ इत्यादि सम्भार एकत्रित किये जाने चाहिये।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – भवति! यदाज्ञप्तं महाराजेन तत् सर्वं सङ्कल्पितम्।पश्य –

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं

न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः।।3।।

अन्वयः – सव्यजनं छत्रं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितम्। सदर्भकुसुमाः तीर्थाम्बुपूर्णा हेममया घटा न्यस्ताः। पुष्यरथश्च युक्तः। मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः। अस्य सर्वस्य हि मङ्गलं स भगवान् वसिष्ठः वेद्यां स्थितः (अस्ति)।।3।।

व्याख्या – छत्रमिति– सव्यजनम् = व्यजनेन सहितम् सव्यजनम् = चामर सहितम्, छत्रम् = राज्ञाम् शिरसि धारणीयम् श्वेतातपत्रम्। सनन्दिपटहम्–नन्दयतीति = नन्दी तदर्थ यत् = पटहः = आनकः तेन सहितम्, भद्रासनम्–भद्रं = कल्याणकारकम्, मणिखचितम् च तदासनं चेति भद्रासनम् कल्पितम्–उपस्थापितम्। सदर्भकुसुमाः–दर्भाश्च कुसुमानि च दर्भकुसुमानि ताभ्यां सहिताः कुशकुसुमयुताः, तीर्थाम्बुपूर्णाः–तीर्थानाम् = समुद्रसरिताम् अम्बुभिः = जलैः पूर्णाः = भरिताः हेममयाः = सुवर्णरचिताः घटाः = माङ्गलिकस्नानार्थं कलशाः न्यस्ताः = स्थापिताः। पुष्यरथश्च–यच्च रथं समराय न भवति असौ पुष्यरथः–क्रीडाविहार रथः, युक्तः = सज्जीकृतः। मन्त्रिसहिताः–मन्त्रिभिः–सचिवैः सहिताः, पौराः = पुरेभवाः = नगरनिवासिनः, सम्भ्रान्त जनाः = समभ्यागताः एकत्रीभूय अभिषेकभूमौ समागताः। अस्य शीघ्रभाविनोऽभिषेकसंस्कारस्य, सर्वस्य कार्यकलापस्य हि निश्चयेन मङ्गलम् = मङ्गलानुष्ठापकः मङ्गलस्वरूपो वा भगवान् वसिष्ठमहर्षिः वेद्याम् = अभिषेकार्थमुपकल्पितायां भूमौ, स्थितः = समागतः। अत्र यथावद् वस्तु वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। मङ्गलमित्यत्र हेतुहेतुमतोरभेदवर्णनात् हेतुरलङ्कारोऽपि। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।।3।।

अनुवाद – कञ्चुकी – पूज्ये! श्रीमान् महाराज के आज्ञानुकूल अभिषेक की सारी सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी हैं। देखिये –

चँवर के सहित छत्र, पटह से युक्त स्वर्णमय सिंहासन, कुश एवं कुसुमों से युक्त नाना तीर्थों के जल से परिपूर्ण सुवर्णमय अभिषेक कलश तथा घोड़ों से जुता हुआ क्रीडा-विहारवाला सुसज्जित यह पुष्यरथ है। मन्त्रिगणों के साथ नगरनिवासी सम्भ्रान्त सज्जन लोग आये हुए हैं। इतना ही नहीं, इन समस्त मङ्गलकृत्यों के विधाता स्वयं माङ्गलिक स्वरूपधारण किये ये भगवान् वसिष्ठ अभिषेक की वेदी पर बैठे हुए हैं ।।3।।

शब्दार्थ – सव्यजनम् = चवँर सहित, छत्रम् = राजा के द्वारा धारण किया जाने वाला छत्र, सनन्दिपटहं = आनन्द प्राप्त करने वाले पटः से युक्त, भद्रासने = राजसिंहासन, सदर्भकुसुमाः = कुश और पुष्पों के सहित, तीर्थाम्बुपूर्णा = अनेक तीर्थों के जलों से परिपूर्ण, हेममया घटा = सोने के घड़े, पुष्परथः = क्रीडा रथ, पौराः = नगरवासी लोग, वेद्याम् = यज्ञ वेदि पर।

टिप्पणी – मन्त्रिसहिताः = मन्त्रिभिः सहिताः (तृतीया तत्पुरुष), सव्यजनम् = व्यजनेन सहितम् (तृतीया तत्पुरुष), तीर्थाम्बुपूर्णा = तीर्थानाम् अम्बुभिः पूर्णा (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत पद्य में राज्याभिषेक की वस्तुओं का स्वभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है।

प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है– **'सूर्याश्वैर्मसजस्ताः सगुरवः शार्दूलविकीडितम्'** अर्थात् जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, दो तगण और एक गुरु वर्ण हो, बारहवें और सातवें वर्ण पर यति हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है।

मूलपाठ –

प्रतिहारी – यद्येवं, शोभनं कृतम्। (जइ एव्वं, सोहणं किदं।)

काञ्चुकीयः – हन्त भोः!

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।

रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ।।4।।

अन्वयः – इदानीं भूमिपालेन रामाभिधानं शशाङ्कं मेदिन्याम् अभिषिञ्चता प्रजाः कृतकृत्याः कृताः ।।4।।

व्याख्या – इदानीमिति–इदानीम् = अधुना, भूमिपालेन = राज्ञा दशरथेन, रामाभिधानम् = रामनामकम्, शशाङ्कम् = शीतलशीलसौन्दर्यप्रियदर्शनत्वादिगुण विशिष्टं भूचन्द्रमसम्, मेदिन्याम् = पृथिव्याम्, यौवराज्यपदे अभिषिञ्चता = अभिषेक कुर्वता, प्रजाः = प्रकृतयः, कृतकृत्याः सफलमनोरथाः, कृताः। क्रियमाणे नानेन रामराज्याभिषेकेण प्रजानामभिलषितं सिद्धयतीति भावः। अत्र अभिषिञ्चता इत्यत्र शतृप्रत्ययेनानुपदमेव भवन्नभिषेकः सूचितः। अत्र रामे चन्द्रारोपात् रूपकालङ्कारः। 'रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे' इति तल्लक्षणात्। किञ्च प्रजानां कृतकृत्यताकरणे उत्तरवाक्यार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गमपि 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते' इति तल्लक्षणात्। भूमिपालेनेति विशेष्यस्य साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि। अनुष्टुप् छन्दः ।।4।।

अनुवाद –

प्रतिहारी – यदि ऐसा है तब तो प्रसन्नता की बात है।

कञ्चुकी – यह बड़े हर्ष का विषय है–

महाराज ने शैत्य आह्लादकत्वादि गुणविशिष्ट इस पृथ्वी के चन्द्रस्वरूप श्रीराम का राज्याभिषेक करते हुए अपनी समस्त प्रजाओं का अभिलषित मनोरथ परिपूर्ण किया है।।4।।

शब्दार्थ – इदानीम् = इस समय राम का राज्याभिषेक करके, भूमिपालेन = महाराज दशरथ के द्वारा, मेदिन्याम् = पृथिवी पर, रामाभिधानम् = जिनका नाम राम है, अभिषिञ्चिता= युवराज पद पर अभिषेक करके, कृत्यकृत्याः = सिद्ध मनोरथ वाले।

टिप्पणी – भूमिपालेन = भूमिं पालयति इति भूमिपालः, रामाभिधानम् = राम एव अभिधानं यस्य (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत पद्य में राम पर चन्द्रमा का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है तथा हेतु सहित प्रजा की कृतकृत्यता का वर्णन होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है। प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

प्रतिहारी – त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः। (तुरवदु तुरवदु दाणिं अय्या।)

काञ्चुकीयः – भवति! इदं त्वर्यते। (निष्क्रान्तः)

प्रतिहारी – (परिक्रम्यावलोक्य) आर्य! सम्भवक! सम्भवक! गच्छ त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय (अन्यतो गत्वा) सारसिके! सारसिके! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयेभ्यो विज्ञापय–कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति। यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि। (अय्य! संभवअ ! संभवअ ! गच्छ, तुवं पि महाराअवअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवरेहि। सारसिए! सारसिए! सङ्गीदसालं गच्छिअ नाडईआणं विण्णवेहिकालसवादिणा णाडएण सज्जा होइ त्ति। जाव अहं पि सव्वं किदं त्ति महाराअस्स णिवेदेमि।

(निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका – अहो अत्याहितम्। परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितुमिवेच्छामि। न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्। (अहो! अच्चाहिदं परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसीं, किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स। हसिदुं विअ इच्छामि। ण खु एआइणीए हसिदव्वं।)

अनुवाद –

प्रतिहारी – आर्य! अभी-अभी इसी समय शीघ्रता करो।

कञ्चुकी – पूज्ये! यह लो अभी-अभी शीघ्र ही किया। (ऐसा कहकर प्रस्थान करता है)

प्रतिहारी – (घूमकर, इधर-उधर देखकर) आर्य संभवक! संभवक! जाओ तुम भी महाराज की आज्ञा के अनुसार पूज्य पुरोहित जी को ससम्मान शीघ्र लेकर यहाँ आओ। (पुनः दूसरी ओर जाकर) सारसिके! सारसिके! तुम भी सङ्गीतशाला में जाकर अभिनय करने वाले नटों को सूचित करो कि वे भी इस अभिषेक समयोचित नाटक के लिये समुद्यत हो जायें। अच्छा! अब मैं 'सारी तैयारी पूर्ण हो चुकी है' इसकी सूचना महाराज को जाकर दे दूँ।

(इतना कहकर वहाँ से चली जाता है)

(वल्कल लिए अवदातिका का प्रवेश)

अवदातिका – ओह महान् अनर्थ हो गया जो परिहास में भी दूसरे का वल्कल उठा लेने से मुझे इतना भयभीत होना पड़ा। (जब परिहास में दूसरे का वल्कल लेने मात्र से मेरी यह दशा है तो) जो लोग दूसरे की वस्तु का अपहरण कर लेते हैं तो उनकी दशा कैसी होगी ? अच्छा! अब मेरी हँसने जैसी इच्छा हो रही है; किन्तु अकेले नहीं हँसना चाहिये। (क्योंकि हँसी का आनन्द तो अपने परिवार के मध्य में आता है)

मूलपाठ –

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता – हञ्जे! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते। किन्नु खल्विवैतत्? (हञ्जे! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ। किं णु हु विअ एदं।)

चेटी – भट्टिनि! सुलभापराधः परिजनो नाम। अपराद्धा भविष्यति। (भट्टिणि! सुलहावराहो परिअणो णाम। अवरज्झा भविस्सदि।)

सीता – नहि नहि, हसितुमिवेच्छति।(णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि।)

अवदातिका – (उपसृत्य) जयतु भट्टिनी! भट्टिनि! न खल्वहमपराद्धा। (जेदु भट्टिणी! भट्टिणि ! ण खु अहं अवरज्झा।)

सीता – का त्वां पृच्छति। अवदातिके! अवदातिके! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम्। (का तुमं पुच्छदि। ओदादिए! ओदादिए! किं एदं वामहत्थपरिगहिदं।)

अवदातिका – भट्टिनि! इदं वल्कलम्। (भट्टिणि! वक्कलं।)

सीता – वल्कलं कस्मादानीतम्। (वक्कलं किस्स आणीदं।)

अवदातिका – शृणोतु भट्टिनि। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत्। न च तया दत्तम्। ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम्। (सुणादु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिब्बुत्तरङ्गप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अम्हेहि जाइदा आसि। ण अ ताए दिण्णं। तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं।)

सीता – पापकं कृतम्। गच्छ, निर्यातय। (पावअं किदं। गच्छ, णिय्यादेहि।)

अवदातिका – भट्टिनि! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम्। (भट्टिणि? परिहासणिमित्तं खु मए एदं आणीदं।)

अनुवाद –

(परिचारिका सहित सीता का प्रवेश)

सीता – हल्ले चेटी! आज अवदातिका अपनी आकृति से सशङ्कित जैसी दिखाई पड़ती है यह क्या बात है ?

चेटी – महारानी जी! भृत्यवर्गों से कुछ न कुछ अपराध होते ही रहते हैं। इससे भी कुछ अपराध हुआ होगा।

सीता – नहीं नहीं। यह तो हंसना चाहती है।

अवदातिका – सीता के समीप जाकर जय हो महारानी जी! मैंने कोई भी अपराध नहीं किया।

सीता – तुझसे अपराध के विषय में कौन पूछता है? अवदातिके! बता यह बायें हाथ में क्या ले रखी है?

अवदातिका – महारानी जी यह वल्कल है।

सीता –तू वल्कल कहाँ से ले आई?

अवदातिका – भट्टिनि सुनिये। नेपथ्यरक्षिका आर्यरेवा से हम लोगों ने रङ्गशाला का कार्य सम्पन्न हो जाने पर उससे बचा हुआ एक अशोक का पत्ता माँगा था किन्तु उसने हमें दिया नहीं। यह उसका अपराध था। इसी अपराध के उचित दण्डस्वरूप हमने उसके वल्कल का अपहरण किया है।

सीता – तो तुमने यह महान् पापकर्म किया। अच्छा अभी जाओ उसे लौटा दो।

अवदातिका – भट्टिनि! मैंने चोरी की दृष्टि से नहीं, अपितु परिहास करने के लिये वह वल्कल लिया है। फिर पाप कैसे?

मूलपाठ –

सीता – उन्मत्तिके! एवं दोषो वर्धते। गच्छ, निर्यातय, निर्यातय। (उन्मत्तिए! एव्वं दोसो वड्ढइ। गच्छ, णिय्यादेहि णिय्यादेहि।)

अवदातिका – यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (प्रस्थातुमिच्छति)। (जं भट्टिणी आणवेदि।)

सीता – हला एहि तावत्। (हला एहि दाव।)

अवदातिका – भट्टिनि! इयमस्मि। (भट्टिणि! इअम्हि।)

सीता – हला! किन्नु खलु ममापि तावत् शोभते। (हला! किंणु हु मम वि दाव सोंहदि।)

अवदातिका – भट्टिनि! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। अलङ्करोतु भट्टिनि। (भट्टिणि! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम। अलङ्करोदु भट्टिणी।)

अनुवाद –

सीता – पगली! पाप तो इसी प्रकार से बढ़ते हैं, जल्दी जाकर उसको वल्कल लौटा दो, अवश्य लौटा दो।

अवदातिका – जैसी महारानी जी की आज्ञा। (इतना कहकर जाना चाहती है।)

सीता – सखि! जरा इधर तो आ।

अवदातिका – महारानी जी यह आई।

सीता – सखि, क्या यह मुझे अच्छा लगेगा?

अवदातिका – महारानी जी! सौन्दर्य तो उसी को कहते ही हैं जिस पर सब कुछ (चाहे वह सुन्दर हो अथवा असुन्दर हो) अच्छा लगे। आप इसे पहन कर देखें तो सही।

मूलपाठ –

सीता – आनय तावत्। (गृहीत्वाऽलङ्कृत्य) हला! पश्य, किमिदानीं शोभते? (आणेहि दाव! हला! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि?)

अवदातिका – तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्। (तव खु सोहादि णाम। सौवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तम्।)

सीता – हज्जे! त्वं किञ्चिन्न भणसि। (हज्जे! तुवं किञ्चि ण भणासि।)

चेटी – नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहर्षितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते। (पुलकं दर्शयति।) (णत्थि वाआए पओअणं। इमे पहरिसिदा तणुरुहा मन्तेन्ति।)

सीता – हज्जे! आदर्श तावदानय। (हज्जे! आदंसअं दाव आणेहि।)

अनुवाद –

सीता – अच्छा ले आओ। (चेटी के हाथ से वल्कल लेकर तथा पहनकर) अच्छा देखो यह मुझे शोभा दे रहा है क्या?

अवदातिका – आपको तो यह बहुत अच्छा लग रहा है। अरे! यह वल्कल तो (आपकी शरीर की कान्ति से) सुवर्णमय प्रतीत हो रहा है।

सीता – (दूसरी चेटी से) सखि! तुम इस विषय में मौन क्यों हो?

चेटी – महारानी जी! तुम्हारा रूप वर्णन से परे है। ऐसा हमारे शरीर के रोमोद्गम से प्रतीत हो रहा है। (इतना कहकर अपने पुलकित शरीर को दिखाती है।)

सीता – सखि! दर्पण तो ला।

मूलपाठ –

चेटी – यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य प्रविश्य) भट्टिनि! अयमादर्शः। (जं भट्टिणि आणवेदि। भट्टिणि! अजं आदंसओ।)

सीता – (चेटीमुखं विलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि वक्तुकामेव। (चिट्ठदु दाव आदंसओ। तुवं किं वि वत्तुकामो विअ।)

चेटी – भट्टिनि! एवं मया श्रुतम्। आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति अभिषेकोऽभिषेक इति। (भट्टिणि! एवं मए सुदं। अय्यबालाई कञ्चुई भणादि अहिसेओ अहिसेओ त्ति।)

सीता – कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति। (को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि।)

(प्रविश्य अपरा)

चेटी – भट्टिनि! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम्। (भट्टिणि! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं।)

अनुवाद –

चेटी – आपकी जैसी आज्ञा। (वहाँ से हटकर पुनः सीता के पास जाकर) महारानी जी! लीजिये। यह रहा आपके लिये दर्पण।

सीता – (चेटी मुंह की ओर निहारते हुए) दर्पण रहने दो। मालूम होता है कि तुम कुछ कहना चाहती हो।

चेटी – महारानी जी! मैंने ऐसा आज सुना है आर्य बालाकि कञ्चुकी को कह रहे थे कि अभिषेक है अभिषेक।

सीता – होगा किसी का राज्याभिषेक।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

दूसरी चेटी – महारानी जी! महान् शुभ समाचार है, महान् शुभ समाचार है।

मूलपाठ –

सीता – किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे। (किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि।)

चेटी – भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते। (भट्टिदारओ किल अहिसिञ्चीअदि।)

सीता – अपि तातः कुशली? (अवि तादो कुसली।)

चेटी – महाराजेनैवाभिषिच्यते। (महाराएण एव्व अहिसिञ्चीअदि।)

सीता – यद्येवं, द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशालतरमुत्सङ्गं कुरु। (चइ एव्वं, दुदीअं मे पिअं सुदं। विसालदरं उच्छङ्गं करेहि।)

चेटी – भट्टिनि! तथा। (तथा करोति) (भट्टिणि! तह।)

सीता – (आभरणान्यवमुच्य ददाति)

अनुवाद –

सीता – क्या मन में छिपाये बोल रही हैं।

चेटी – राजकुमार श्रीराम राज्य पर अभिषिक्त होने वाले हैं।

सीता – अरी बता। पिता जी तो सकुशल हैं।

चेटी – महाराज ही तो स्वयं अभिषेक करने जा रहे हैं।

सीता – यदि ऐसी बात है तब तो अभिषेक के अतिरिक्त यह दूसरा प्रिय समाचार सुनायी पड़ा। अच्छा अपना आंचल अच्छी तरह फैला।

चेटी – महारानी की जो आज्ञा। (अंचल पसारती है।)

सीता – (अपने शरीर का आभूषण उतारकर प्रदान करती हैं।)

मूलपाठ –

चेटी – भट्टिनि! पटहशब्द इव। (भट्टिणी ! पटहसद्दो विअ।)

सीता – स एव। (सो एव्व।)

चेटी – एकपदे अवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः। (एक्कपदे ओघटिओ तुहीओ पटहसद्दो संवुत्तो।)

सीता – को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य। अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। (को णु खु उग्घादो अहिसेअस्स। अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम।)

चेटी – भट्टिनि! एवं मया श्रुतं। भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति। (भट्टिणि! एवं मऐ सुदं–भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदि त्ति।)

अनुवाद –

चेटी – महारानी जी पटह के शब्द जैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है।

सीता – मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

चेटी – किन्तु अभी एक ही बार बजकर बन्द भी हो गया।

सीता – अभिषेक में कौन-सा विघ्न आ पड़ा। अथवा अनेक प्रकार की सम्भावनायें राजकुलों में होती रहती हैं।

चेटी – महारानी जी! मैंने ऐसा भी सुना है कि महाराज राजकुमार का अभिषेक कर सद्यः वन चले जायेंगे।

मूलपाठ –

सीता – यद्येवं, न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम! (जइ एव्वं, ण सो अहिसेओदआ, मुहोदअं णाम।)

(ततः प्रविशति रामः)

रामः – हन्त भोः!

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ? ।।5।।

अन्वयः – गुरुजने स्थिते पटहे आरब्धे भद्रासने लङ्घिते घटे स्कन्धोच्चारण नम्यमानवदनप्रच्योतितोये राज्ञा आहूय मयि विसर्जिते जनः मे धैर्येण विस्मितः। भोः! यदि स्वः पुत्रः पितुः वचः कुरुते तत्र कः विस्मयः ।।5।।

व्याख्या – आरब्धे इति–गुरुजने वसिष्ठवामदेवादिपुरोहितगणे अभिषेक मङ्गलावलोकनोत्सुकतया स्थिते = उपस्थिते भद्रासने = सिंहाकारमणिखचित स्वर्णमयपीठे लङ्घिते = आरूढे मयेति शेषः। घटे = नानातीर्थजलपरिपूर्णकलशे स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये–स्कन्धे यत् उच्चारणं = उन्नयनम् उत्थापनं वा तेन नम्यमानं = सौकर्यसम्पादनाय नम्रीक्रियमाणं यद् वदनम् = गलोर्ध्वदेशः तस्मात् प्रच्योतितोये = पातोन्मुखसलिले, एवंभूते अभिषेके प्रवृत्ते राज्ञा = महाराजेन आहूय आकार्य विसर्जिते भद्रासनादवतार्य वनं गच्छेत्या दिष्टे मयि = रामे हर्षविषादरहिते सति जनः = तदानीमुपस्थितजनसमूहः मे धैर्येण स्वनिष्ठातोऽविचलनं धैर्यं तेन गाम्भीर्येण–यदुक्तम्, 'आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। मया न लक्षितस्तस्य वदने स्वल्पविक्रिया। विस्मितः आश्चर्यचकितोऽभूत्। भोः स्वः = आत्मीयः पुत्रः यदि पितुः वचनम् = आदेशम् कुरुते = अनुतिष्ठति तत्र विषये कः विस्मयः = कीदृगाश्चर्यम्। पितुराज्ञापालनमेव पुत्र कर्त्तव्यम् एतदेव कृत्वा मया किमप्यपूर्वं नाचरितमतस्तत्र किमाश्चर्यमिति भावः। एतच्च पितुराज्ञाकरणम् पुत्रस्य श्रेयसे भवति। यदुक्तमभियुक्तैः 'पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः' इति। अत्र काव्यलिङ्गलङ्कारः। तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम्। को विस्मयः इति काक्वा वक्रोक्तिरपि। शार्दूलविक्रीडितं छन्द।।5।।

अनुवाद –

सीता – यदि ऐसी बात है तो यह अभिषेकार्थ आया हुआ जल दुःख के जल में परिणत हो जायेगा।

(राम का प्रवेश)

राम – कैसे हर्ष की बात है कि–

पूज्य गुरुजनों की उपस्थिति में जब पटह बाजा रूप बाजा बजने लगा मैं सिंहासन पर आरूढ हो गया, कन्धे पर उठाये गये नीचे मुख किये तीर्थजलपूर्ण कलशों से जल

उड़ेलकर जब मेरा अभिषेक–कार्य सम्पन्न कर रहे थे उसी समय महाराज ने मुझे उस सिंहासन से उतारकर वन जाने की आज्ञा देकर मेरा परित्याग कर दिया। उस समय हर्षविषादरहित मुझे देखकर वहाँ उपस्थित दर्शक लोग आश्चर्यचकित से रह गये। भला इसमें आश्चर्य की क्या बात है? अपने पुत्र को पिता की आज्ञा माननी ही चाहिये यह तो उसका कर्तव्य ही है। अतः मैंने कौन सा अपूर्व कार्य कर दिखाया जिससे लोगों को अचम्भित होना पड़ा।।5।।

शब्दार्थ – पटहे = नगाड़ा, आरब्धे = बजना शुरू होने पर, भद्रासने = सिंहासन पर, स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये = स्कन्धों तक उठाकर घड़े के मुख से अभिषेक के लिए जल गिरने पर, आहूय = बुलाकर, विस्मितः = अत्यन्त चकित, स्वःपुत्र = अपना पुत्र, लङ्घिते = बैठने पर।

टिप्पणी – स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये = स्कन्धे उच्चारणं तेन नम्यमानं यद् वदनं तस्मात् प्रच्योति तोये (तत्पुरुष गर्भ बहुव्रीहि), भद्रासने = भद्रं च तत् आसनम् (कर्मधारय समास)।

प्रस्तुत श्लोक में पिता की आज्ञा का पालन करना ही पुत्र का धर्म है, इत्यादि का प्रतिपादन होने के कारण काव्यलिङ्ग अलंकार है। को विस्मयः, इसमें आश्चर्य क्या है? में काकु वक्रोक्ति अलंकार है और राज्याभिषेक की समस्त सामग्री के विद्यमान होने पर भी राज्याभिषेक न हो पाने के कारण विशेषोक्ति अलंकार है। प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

'विश्रम्यतामिदानीं पुत्रे'ति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

अनुवाद –

उस समय महाराज ने स्वयं ही 'पुत्र! अभिषेक कार्य से विरत रहो' ऐसा कहकर मुझे विदा कर दिया। अस्तु बड़े आनन्द की बात है कि राज्य के रक्षणावेक्षणादि भार से मुक्त हो जाने के कारण मेरा मन उन्मुक्त वायुमण्डल में अनुप्राणित हो रहा है। अब मैं वही राम हूँ जो अभिषेक के पूर्व था और महाराज भी वही महाराज हैं जैसा कि अभिषेक के पहले इस राज्य के शासक थे। अच्छा, मिथिलाधिराजतनया को देखना चाहता हूँ।

मूलपाठ –

अवदातिका – भट्टिनि! भर्तृदारकः खल्वागच्छति। नापनीतं वल्कलम्? (भट्टिणि! भट्टिदारओ खु आगच्छइ। णावणीदं वक्कलं?)

रामः – मैथिलि! किमास्यते?

सीता – हम् आर्यपुत्रः। जयत्वार्यपुत्र। (हं अय्यउत्तो। जेदु अय्यउत्तो।)

रामः – मैथिलि! आस्यताम्। (उपविशति)

सीता – यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति। (उपविशति) (जं अय्यउत्तो आणवेदि।)

अवदातिका – भट्टिनि! स एव भर्तृदारकस्य वेषः। अलीकमिवैतद् भवेत्। (भट्टिणि! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो। अलिअं विअ एदं भवे।)

अनुवाद –

अवदातिका – महारानी जी, राजकुमार आ रहे हैं। आपने अभी तक शरीर से इस वल्कल को नहीं उतारा।

राम – मैथिलि! क्या बैठी हो?

सीता – अरे! यह तो आर्यपुत्र हैं। (सीता आसन से उठकर स्वागत करते हुए) आर्यपुत्र, सर्वोत्कर्षेण निवास करें।

राम – मैथिलि। बैठो। (स्वयं भी बैठ जाते हैं)

सीता – जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा (बैठ जाती है)

अवदातिका – महारानी जी! राजकुमार का पहले जैसा ही वेष है कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। ज्ञात होता है कि वह बात झूठी ही है।

मूलपाठ –

सीता – तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते। अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम। (तादिसो जणो अलिअं अ मन्तेदि। अहव बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम।)

रामः – मैथिलि! किमिदं कथ्यते।

सीता – न खलु किञ्चित्। इयं दारिका भणति–अभिषेकोऽभिषेक इति। (ण खु किञ्चि। इअं दारिआ भणादि–अहिसेओ अहिसेओ त्ति।)

रामः – अवगच्छामि ते कौतूहलम्। अस्त्यभिषेकः। श्रूयताम्। अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्षमेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र राम! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः।

अनुवाद –

सीता – वैसे पुरुष कभी झूठ नहीं बोल सकते। अथवा कौन जाने राजकुलों में ऐसी बहुत सी बातें होती ही रहती हैं।

राम – मैथिलि! तुम दोनों क्या-क्या बात कर रही हो।

सीता – कुछ नहीं। यह लड़की 'अभिषेक है अभिषेक है' ऐसा कह रही है।

राम – तुम्हारे मन में जिस अभिषेक वृत्तान्त को सुनने के लिये कुतूहल हैं उसे मैंने समझ लिया। हाँ, आज अभिषेक था परन्तु सुनो। आज महाराज ने आचार्य, मन्त्री, मित्र, पुरोहित तथा पुरवासियों की उपस्थिति में एक छोटा सा दरबार बुलाकर मुझे बाल्यकाल से परिचित अपनी गोद में बिठाकर बहुत ममत्व प्रदर्शित करते हुए मातृगोत्र-कौशल्यानन्दन कौशल्यामातः आदि नामों से सम्बोधित करते हुए कहा– बेटा एकछत्र इस राज्य को स्वीकार करो।

मूलपाठ –

सीता – तदानीम् आर्यपुत्रेण किं भणितम्? (तदाणिं अय्यउत्तेण किं भणिदं?)

रामः – मैथिलि! त्वं तावत् किं तर्कयसि?

सीता – तर्कयाभ्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःष्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति। (तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स पादमूलेसु पडिअं त्ति।)

अनुवाद –

सीता – उस समय आर्यपुत्र ने क्या कहा?

राम – मैथिलि! तुम क्या सोचती हो कि मैंने क्या कहा होगा?

सीता – मैं सोचती हूँ आर्यपुत्र इस विषय में कुछ न कहकर लम्बी श्वास लेते हुए महाराज के श्रीचरणों में गिर गये होंगे।

मूलपाठ –

रामः – सुष्ठु तर्कितम्। अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। तत्र हि पादयोरस्मि पतितः।

समं बाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः।

पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः।।6।।

अन्वयः – समं तस्य बाष्पेण ममोपरि पतिता मम (बाष्पेण) अधः (पितृ पादयोः) पतता मम शिरः क्लेदितम्। मे पितुः पादौ च क्लेदितौ ।।6।।

व्याख्या – सममिति। समम् = एककालावच्छेदेन। तस्य = पितुः बाष्पेण = अश्रुणा ममोपरि = मम शिरस उपरि। तस्य = मम पितुः अधःप्रदेशे = चरणयोरिति यावत् पतता मम च बाष्पेणाश्रुजलेन मम शिरः क्लेदितम् = संसिक्तम् मे पितुः पादौ च क्लेदितौ = संसिक्तौ। अत्र प्रक्रमदोषः श्लोके मे शिर इति क्रमानुसारेण पूर्ववाच्यमासीत्। अत्र दशरथस्याश्रूणि वात्सल्यतया, पितुः स्नेहातिशयं विलोक्य मम पितृस्नेहतयेति यथावद् वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। लक्षणं प्रागुक्तमेव। अनुष्टुप् छन्दः। एतस्यापि लक्षणं प्रागुक्तमेव ।।6।।

अनुवाद –

राम – तुमने ठीक हो सोचा। विधाता तुल्यस्वभाववाले जोड़े संसार में कम ही पैदा करते हैं। अवश्य ही मैं पितृपादों में गिर गया।

उस समय ऊपर से मेरे पिता के आँसू मुझ पर तथा नीचे पितृचरणों में गिरते हुए मेरे आँसू साथ-साथ गिर रहे थे जिससे मेरा शिर तथा पिताजी के चरण एक साथ ही क्लिन्न (आर्द्र) हो गये।।6।।

शब्दार्थ – समम् = एकसाथ, तस्य = पिता महाराज दशरथ के, बाष्पेण = आँसुओं से, तस्योपरि = उनके ऊपर, क्लेदितम् = गीला कर दिया।

टिप्पणी – क्लेदितौ = क्लिद्+णिच्+क्त (प्रथमा विभक्ति द्विवचन), पतता = पत्+शतृ (तृतीया विभक्ति एकवचन), बाष्पेण = तृतीया विभक्ति एकवचन, तस्योपरि = तस्य+उपारि (गुण सन्धि), ममाप्यधः = मम+अपि+अधः (दीर्घ, यण् सन्धि)

प्रस्तुत श्लोक में पिता और पुत्र के स्नेह का अत्यधिक स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है। प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – ततस्ततः। (तदो तदो।)

रामः – ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आपन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः।

सीता – ततस्ततः। (तदो तदो।)

रामः – ततस्तदानीं,

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते।
सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ।।7।।

अन्वयः – शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे अभिषेके रुदता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते सम्भ्रान्तया मन्थरया राज्ञः कर्णे शनैः किमप्यभिहितं च। न च राजा अस्मि।।7।।

व्याख्या – शत्रुघ्नेति। शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे = शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्यां गृहीतः घटः यस्मिन् तथाभूते अभिषेके = अभिषेचनकार्ये समारब्धे यद्यपि रामायणे शत्रुघ्नस्य तदानीं भरतेन सह मातुलगृहे निवास उक्तस्तथापि कविनात्र तदनुसरणे प्रयासो न विहितः। निरङ्कुशा हि कवयः रुदता आनन्दजाश्रूणि मुञ्चता नृपतिना स्वयं छत्रे गृहीते सति संभ्रान्तया = त्वरितागतया मन्थरया तन्नाम्न्या कुब्जया कैकेयोदास्या राज्ञः दशरथस्य कर्णे = श्रवणपुटे शनैः = मन्दं मन्दं यथान्ये न शृणुयुस्तथा किमपि अभिहितम् = उक्तम्। तदा प्रभृति अहं राजा नास्मि राजा न भवामि च। श्लोके द्वौ चकारौ क्रियायोगपद्यं द्योतयतः। मन्थराकथनसमकालमेव ममाभिषेको निरस्त इति भाव। वसन्ततिलकावृत्तम्। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणम् ।।7।।

अनुवाद –

सीता – इसके बाद तब फिर क्या हुआ?

राम – फिर तो जब मैंने उनका प्रत्येक बार का अनुनय अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने अपने जराजीर्ण प्राणों की मुझे शपथ दिलाई।

सीता – तब फिर।

राम – फिर तो उस समय ज्यों ही

अभिषेक के लिये लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने तीर्थजलपूर्ण घट उठाया तथा महाराज ने आनन्दाश्रु परिपूर्ण नेत्रों से छत्र लगाने के लिये संभाला ही था कि इतने में ही शीघ्रता से मन्थरा ने आकर महाराज के कानों में धीरे से कुछ कह दिया। इसलिये समस्त अभिषेकसामग्री के एकत्रित किये जाने पर तथा उसका उपयोग प्रारम्भ होने पर भी फिर अभिषेक कार्य रुक गया और मैं राजा नहीं हुआ ।।7।।

शब्दार्थ – शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे = शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण के द्वारा तीर्थ जल से परिपूर्ण घट को धारण किए जाने पर, छत्रे = छत्र, सम्भ्रान्तया = हाँफती हुई, नृपतिना = राजा दशरथ द्वारा, रुदता = रोते हुए, शनैः = धीरे से, अभिहितम् = कहा।

टिप्पणी – रुदता = रुद्+शतृ (तृतीया एकवचन)। गृहीते = गृह्+क्त (सप्तमी एकवचन)। अभिहितम् = अभि+धा+क्त। घटेऽभिषेके = घटे+अभिषेके (पूर्वरूप सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – प्रियं मे महाराज एवं महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः। (पिअं मे महाराओ एव्व महाराओ, अय्यउत्तो एव्व अय्यउत्तो।)

रामः – मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि?

सीता – न खलु तावदाबध्नामि। (ण खुदाव आवज्झामि।)

रामः – न खलु। प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथाहि –

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ।।8।।

अन्वयः – कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ हस्तौ संस्रंसिताभरणगौरतलौ च गात्रे। आभरणभारनतानि एतानि स्थानानि तावत् समतां नैव उपयान्ति च ।।8।।

व्याख्या – कर्णौविति। कर्णौ श्रवणपुटौ, त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ = त्वरया शीघ्रताकारणेन अपहृतानि = अपसारितानि भूषणानि ययोस्तौ त्वरापहृतालङ्कारौ एव भुग्नपाशौ–भुग्नः =वक्रतां गतः पाशः = ग्रन्थितुल्यो भूषणाधारभागो ययोस्तौ शीघ्रतयापनीतेन भूषणे श्रवणे तत्कृतं भुग्नत्वमधुनाऽपि प्रतीयते इति भावः। हस्तौ च बाहू च संप्रेसितागौरतलौ–संत्रंसितानि = बलादपनयनकारणेन प्रच्यावितानि आभरणानि तैर्गौरं तलं ययोस्तौ तथाभूतौ स्तः बलादपनीतं कटकाद्याभूषणास्रंसनसंभवं बाहुभागगौरत्वमधुनापि विद्यमानं सत् भूषणापगमस्याचिरनिर्वृत्ततां प्रत्याययति। गात्रे = वपुषि, आभरणभारनतानि = भूषणधारणभारनिम्नीभूतानि स्थानानि समतां स्वां स्वाभाविकी स्थिति नैव उपयान्ति नैव प्राप्नुवन्ति। त्वं स्व गात्रशोभीनि भूषणानि अधुनैवापसारितवत्यसि यतः भूषणापसारणनम्रीभूतानि तानि तानि स्थानानि अद्यापि स्वस्वप्रतिभावं भजन्ते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ।।8।।

अनुवाद –

सीता – यह मेरे लिये अच्छा ही हुआ क्योंकि महाराज महाराज ही रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे । (अन्यथा राज्याभिषेक के अनन्तर महाराज के वन जाने से तथा आप पर राज्यभार आ पड़ने से मुझे क्लेश होता)

राम – मैथिलि! तुमने ये भूषण क्यों उतार डाले?

सीता – मैं तो इन्हें पहनती ही नहीं (फिर उतारने की बात तो दूर है)

राम – नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। तुम इन्हें पहनती तो हो क्योंकि ये गहने तुम्हारे शरीर से अभी-अभी उतारे जान पड़ते हैं क्योंकि

कर्णफूल के उतारने से कानों के छेद की ग्रन्थि नीचे की ओर झुक जाने से टेढ़े ज्ञात हो रहे हैं। कङ्कणादि आभूषण के बलात् उतारे जाने के कारण हाथ के ये तलवे गौर

वर्ण के प्रतीत हो रहे हैं। अधिक क्या कहें, तुम्हारे शरीर के वे भाग जहाँ पर भूषण उतारे जाने के कारण कुछ गड्ढे से पड़ गये हैं अभी अपने स्वरूप में प्राप्त हुए नहीं दिखाई पड़ते।।8।।

शब्दार्थ – कर्णौ = दोनों कान, त्वरा = शीघ्रता से, अपह्रतभूषणभुग्नपाशौ = आभूषणों को उतारने से टेढे छिद्र वाले, संस्रिसिताभरणगौरतलौ = आभूषणों को निकालने के प्रयास से लाल हुई हथेलियों वाले, आभरणभारनतानि = आभूषणों के भार से झुके हुए।

टिप्पणी – आभरणभारनतानि = आभारणस्य भारः आभरणभारः तेन नतानि आभरणभारनतानि (तत्पुरुष समास), त्वरापह्रतभूषणभुग्नपाशौ = त्वरया अपह्रतैः भूषणैः भुग्नौ पाशौ यस्य (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में भूषण उतारने के क्रम में हाथों की लालिमा का स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलांकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम्। (पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं।)

रामः – तेन हि अलङ्क्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये। (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य) तिष्ठ।

अनुवाद –

सीता – आप असत्य को भी सत्य सिद्ध कर सकते हैं।

राम – अच्छा! तुम इन आभूषणों को पहनो मैं दर्पण दिखाता हूँ (दर्पण हाथ में लेकर अच्छी तरह उसमें कुछ देखकर) ठहरो।

मूलपाठ –

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा? ।।9।।

अन्वयः – आदर्शे वल्कलानि इव एते सूर्य रश्मयः किम्। हसितेन परिज्ञातम् इयं क्रीडा नियमस्पृहा ।।9।।

व्याख्या – आदर्शे इति–आदर्शे = दर्पणे वल्कलानि इव त्वया धृतानि इव प्रतीयन्ते। किन्तु पूर्वोक्तसौवर्णत्वसाम्यात् सन्देहो रामस्य अतः पृच्छति एते सूर्य रश्मयः किम्, वल्कलेभ्यो निःसृताः सूर्यांशवः किम्। निर्णीय आह–भवतु हसितेन = हासेन परिज्ञातम् नैते सूर्य रश्मयः किन्तु वल्कलान्येव। तदनन्तरं तद्विषये विजिज्ञासते इयं क्रीडा आहोस्वित् नियमस्पृहा–नियमस्य = तपश्चरणस्य स्पृहा = समीहा यन्निमित्तमिदं वल्कलधारणमित्यर्थः। संदेहालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ।।9।।

अनुवाद –

दर्पण में तुम वल्कल धारण करने जैसी प्रतीत हो रही हो। ये सूर्य की किरणें तो नहीं? अच्छा तुम्हारी हँसी से मुझे मालूम पड़ गया कि ये सूर्यरश्मियाँ नहीं हैं अपितु वल्कल ही हैं। अच्छा बताओ ये वल्कल क्रीड़ा में धारण की हो या तपस्या करने की तुम्हारी इच्छा हो रही है जिसके लिये इनको धारण की हो।।9।।

शब्दार्थ – आदर्शे = दर्पण में, वल्कलानि इव = वल्कल वस्त्रों की तरह, सूर्यरश्मयः = सूर्य रश्मियों की किरणें, हसितेन = हँसने से, नियमस्पृहा = नियम पालन की इच्छा।

टिप्पणी – सूर्यरश्मयः = सूर्यस्य रश्मयः सूर्यरश्मयः (तत्पुरुष समास), नियमस्पृहा = नियमस्य स्पृहा नियमस्पृहा (तत्पुरुष समास), वल्कलानीव = वल्कलानि+इव (दीर्घ सन्धि), क्रीडेयम् = क्रीडा+इयम् (गुण सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में सन्देह अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

अवदातिके! किमेतत्?

अवदातिका – भर्तः! 'किन्नु खलु शोभते न शोभते' इति कौतूहलेनाबद्धानि। (भट्टा! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आवज्झा।)

रामः – मैथिलि! किमिदम्? इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते। अस्त्यस्माकं प्रीतिः। आनय।

सीता – मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु। (मा खु मा खु अय्यउत्तोअमङ्गलं भणादु।)

रामः – मैथिलि! किमर्थं वारयसि?

सीता – उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति। (उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि।)

अनुवाद –

अवदातिके! यह क्या बात है?

अवदातिका – स्वामिन्! ये वल्कल मुझे अच्छे लगते हैं या नहीं यह जानने के लिये स्वामिनी ने खेल में इसे धारण कर लिया है।

राम – मैथिली! ऐसा क्यों? जो इक्ष्वाकुवंशियों का वृद्धालङ्कार तुमने पहन लिया। अब तो मेरी भी रुचि इन्हें पहनने की हो रही है। अतः यह वल्कल दो।

सीता – नहीं नहीं! आर्यपुत्र को ऐसे अमङ्गल शब्द नहीं बोलना चाहिये।

राम – मैथिलि! मुझे क्यों मना करती हो?

सीता – अभी-अभी आर्यपुत्र ने (विघ्न के कारण) राज्याभिषेक का त्याग किया है इसलिये मुझे आप द्वारा इस वल्कल धारण में भी अमङ्गल जैसी प्रतीति हो रही है।

मूलपाठ –

रामः – मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ।।10।।

अन्वयः – परिहासे स्वयं मन्यु मा उत्पाद्य विशेषतः हि यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया पूर्वम् आबद्धा ।।10।।

व्याख्या–मेति। परिहासे = त्वदुपभुक्तवल्कलयाचनारूपे मम परिहासे स्वयम् आत्मनैव मन्यु = दुःखं खेदं वा मा उत्पाद्य अलं विधाय। विनोदार्थं त्वया धारितस्य वल्कलस्य याचनेऽमङ्गलया शङ्कया व्यथां मा विधेहीत्यर्थः। तत्र कारणमुपन्यस्यति विशेषतः =

विशेषेण हि यतः = यदा मे शरीरार्द्धेन त्वया वल्कला पूर्वमाबद्धा। 'अर्धो वा एष आत्मनो पत्नी' इति श्रुत्वा मद्देहार्धभूतया त्वया स्वदेहे प्रागेव वल्कला आबद्धा। यदि त्वं वल्कलं परिधृतवती तदाऽहमपि धृतवानेव। अतएवार्द्धदेहभूतया त्वया पिनद्धं वल्कलं मया याचते। तत्रामङ्गलस्य शङ्कावसर एव नास्तीत्यर्थः। पूर्ववाक्यार्थे उत्तरवाक्यार्थस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः। अत्र 'मा उत्पाद्य' इति चिन्त्यप्रयोगः।।10।।

अनुवाद –

राम – तुम्हें अपने आप दुःखी नहीं होना चाहिये मैं तो परिहास के लिये ही ऐसा (तुम्हारे द्वारा धारण किये गये इस वल्कल की याचना) कर रहा हूँ विशेष कर मेरे अर्धाङ्गस्वरूप तुमने जब पहले ही इस वल्कल को धारण कर लिया तो मैंने भी धारण कर ही लिया। फिर इसकी याचना में दुःख या आशङ्का किस बात की ?।।10।।

शब्दार्थ – परिहासे = हँसी-हँसी में, स्वयम् = अपने आप, मन्युम् = क्रोध, उत्पाद्य = उत्पन्न करके, शरीरार्धेन = अर्द्धांगिनीभूत तुमने, वल्कल = वल्कल वस्त्र।

व्याकरण – परिहासे = सप्तमी एकवचन, शरीरार्धेन = शरीरस्य अर्धेन शरीरार्धेन (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य आदि पूर्व वाक्यार्थ में उत्तर वाक्यार्थ का हेतु वर्णित होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ – **(नेपथ्ये)**

हा हा महाराजः।

सीता – आर्यपुत्र किमेतत्? (अय्यउत्त! किं एदं?)

रामः – (आकर्ण्य)

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ।।11।।

अन्वयः – नारीणां पुरुषाणां च यदा निर्मर्यादः ध्वनिः ततः प्रभवामीति दैवेन मूले ताडितम् ।।11।।

व्याख्या – नारीणामिति–नारीणां = वनितानां पुरुषाणां = नराणां च यदा = यतः निर्मर्यादः–मर्यादाया निष्क्रान्तः इति निर्मर्यादः स्थितेः बहिः यावदयं ध्वनिः = खेदसूचकः शब्दः यतः अतः सुखानुमेयं कारणमस्य शब्दस्य भवेदिति शेषः। ततः प्रभवामि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् वा सर्वथा मे शक्ति; इति कृत्वा दैवेन = विधात्रा मूले = मुख्यस्थाने एव न तु शाखायामित्यर्थः। ताडितम् = प्रहतः मूलस्थानं प्रहृत्य सर्वथा विनाशो विहित इत्यर्थः। रघुवंशमूलभूते पुरुषे दशरथे प्रहरता देवेन समस्तो रघुवंशः विनाशितः इति दैवस्याप्रतिमं सामर्थ्य सुव्यक्तम्, दैवी विपत्तिः दशरथस्योपरि आपतिता न पुरुषकृता इति भावः। उत्प्रेक्षालङ्कारः। सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। इति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः।।11।।

अनुवाद – (नेपथ्य में)

हाय! हाय! महाराज!

सीता – आर्यपुत्र यह क्या हो गया।

अनुवाद –

राम – (सुनकर)

जो यह स्त्री-पुरुषों का जोर-जोर से भयंकर कोलाहल सुनाई पड़ रहा है इससे ज्ञात होता है कि काल ने कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं रूप अपना सामर्थ्य प्रकट करने के लिये एवं समस्त रघुवंश के विनाश के लिये उसके मूल पर ही इस प्रकार प्रहार किया है ।।11।।

शब्दार्थ – नारीणाम् = स्त्रियों का, पुरुषाणाम् = पुरुषों का, निर्मर्यादः = मर्यादाहीन, ध्वनिः = कोलाहल, सुव्यक्तम् = स्पष्ट होना, दैवेन = विधाता, ताडितम् = प्रहार करना।

व्याकरण – निर्मर्यादः = निष्क्रान्ता मर्यादायाः निर्मर्यादः (अव्ययीभाव समास), प्रभवामीति = प्रभवामि+इति (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः – परित्रायतां परित्रायतां कुमारः।

रामः – आर्य! कः परित्रातव्यः?

काञ्चुकीयः – महाराजः।

रामः – महाराज इति। आर्य! ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथ्वी रक्षितव्येति। अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः?

काञ्चुकीयः – स्वजनात्।

रामः – स्वजनादिति। हन्त! नास्ति प्रतिकारः।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति? ।।12।।

अन्वयः – यथा अरिः शरीरे प्रहरति। स्वजनः तथा हृदये प्रहरति कस्य स्वजनशब्दः इति मे लज्जा उत्पादयति ।।12 ।।

व्याख्या – शरीरे इति। अरिः = शत्रुः शरीरे = वपुषि प्रहरति = घातयति। स्वजनः = आत्मीयो जनः हृदये = मनसि तथा प्रहरति। शरीरप्रहारः सोढुं शक्यते किन्तु हृदयाघात सर्वथा दुःसहः यतः सोऽनर्थाय कल्पते। यदि स्वजनान्महाराजस्य विपदुपस्थिता तदा दुःशकः तस्य निराकरणोपाय इति तात्पर्यम्। तत्र स्वजनं नामतो ज्ञातुं जिज्ञासते कस्येति–स्वजनशब्दः कस्य विषये प्रयुज्यमानस्तव स्वजनशब्दः यः मां लज्जामुत्पादयति। येन स्वजनेनेदमाचरितं तत्र स्वजनशब्दप्रयोगः मां लज्जयति। कतमोऽयं स्वजनः येनेदं जघन्यमाचरितमिति भावः।।12।।

अनुवाद –

जल्दी यह पता लगाओ यह कैसा कोलाहल है। (कञ्चुकी का प्रवेश)

(कञ्चुकी प्रवेश कर)

कञ्चुकी – कुमार, बचाइये बचाइये।

राम – आर्य, किसे बचाने के लिये कहते हो?

कञ्चुकी – महाराज को।

राम – क्या कहते हो महाराज को? आर्य! तब यह क्यों नहीं कहते कि समस्त भूमण्डल संक्षिप्तरूप से जिसमें समाविष्ट है उस शरीरधारी पृथ्वी की रक्षा कीजिये। अच्छा यह बताओ महाराज पर यह आपत्ति आई कहाँ से?

कञ्चुकी – स्वजन से।

राम – क्या कहते हो आत्मीयजन से? तब तो इसका कोई प्रतीकार नहीं।

जिस प्रकार बाहरी शत्रु शरीर पर आघात करता है उसी प्रकार स्वजन हृदय पर आघात करते हैं। शरीर के आघात की प्रतिक्रिया है पर हृदयाघात का कोई उपचार नहीं। अच्छा यह स्वजन शब्द तुम किसके लिये कहते हो जिसे सुनकर हमें लाज आ रही है।।12।।

शब्दार्थ – शरीरे = देह में, अरिः = शत्रु, स्वजनः = अपना सम्बन्धी, लज्जाम् = लज्जा, उत्पादयिष्यति = उत्पन्न करना।

व्याकरण – प्रहरति = प्र+हृ+तिप् (लट्.प्र.पु.ए.व.), शरीरेऽरिः = शरीरे+अरिः (पूर्वरूप सन्धि), स्वजनस्तथा = स्वजनः+तथा (विसर्ग सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – तत्रभवत्याः कैकेय्याः।

रामः – किमम्बायाः? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

काञ्चुकीयः – कथमिव ?

रामः – श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ।।13।।

अन्वयः – यस्याः शक्रसमः भर्ता या च मया पुत्रवती। अतः तस्या कस्मिन् फले स्पृहा येन अकार्यं करिष्यति ।।13।।

व्याख्या – यस्याः इति। यस्याः = कैकेय्याः भर्ता = स्वामी शक्रसमः = इन्द्र तुल्यः यः मानुषसामर्थ्यासाध्यमपि कार्यं सम्पादयितुमलम्। न केवलं तादृशभर्तृमती अपि पुत्रवत्यपि। तदाह–या मया पुत्रवती = पुत्रयुक्ता यं यं कामयेत् सा तत्सर्वं तस्याज्ञया साधयितुमहं सक्षम इत्यर्थः। एतादृश्या अम्बायाः कस्मिन् फले = साध्यरूपे स्पृहा–इच्छा भविष्यति येन फलेन हेतुना एतादृशं जघन्यमकार्यं भर्तृव्यसनरूपं करिष्यति उत्पादयिष्यति। जगति नास्ति किमपि एतादृशं फलं यदहं महाराजो वा साधयितुमसमर्थः। अत्रासन्नं पितृव्यसनं श्रुत्वापि रामः कैकेय्यामचलां श्रद्धां व्यनक्ति। तेनास्य धीरोदात्तता सिद्धयति। अनुष्टुप् छन्दः।।13।।

अनुवाद –

कञ्चुकी – पूज्य कैकेयी के द्वारा यह आपत्ति आयी है।

राम – क्या कहते हो, अम्बा के द्वारा यह आपत्ति आई है? तब तो यह आपत्ति परिणाम में गुणवती सिद्ध होगी।

कञ्चुकी – भद्र! सो कैसे?

राम – आर्य! सुनिये। जिसका पति इन्द्र के समान पराक्रमी तथा मेरे जैसे पुत्र के कारण जो पुत्रवती है। भला उसकी किस फल की आकाङ्क्षा होगी जिसके लिये वह इतना बड़ा जघन्य कार्य करेगी ।।13।।

शब्दार्थ – यस्याः = जिस कैकेयी का, शक्रसमो = इन्द्र के समान, भर्ता = पति, स्पृहा = इच्छा, अकार्यम् = न करने योग्य कार्य।

टिप्पणी – शक्रसमः = शक्रेण समः (तृतीया तत्पुरुष समास), येनाकार्यम् = येन+अकार्यम् (दीर्घ सन्धि)

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – कुमार! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्। तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः।

रामः – आर्य! गुणाः खल्वत्र।

काञ्चुकीयः – कथमिव?

अनुवाद –

कञ्चुकी – राजकुमार! आप अपनी सरलता के कारण विनष्ट बुद्धिवाली कैकेयी में इस प्रकार का विचार न करें। अभी-अभी उसी के कहने से तो आपका अभिषेक रुक गया।

राम – आर्य! उसके इस निश्चय में भी बहुत गुण हैं।

कञ्चुकी – सो कैसे?

मूलपाठ –

रामः – श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव–
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना–
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ।।14।।

अन्वयः – तावत् पार्थिवस्यैव वनगमननिवृत्तिः। मम पितृपरवत्ता। स एव बालभावः नवनृपतिविमर्श प्रजानां शङ्का नास्ति अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः ।।14।।

व्याख्या – वनगमनेति। तावद्–आदौ पार्थिवस्य–राज्ञो दशरथस्य वनगमननिवृत्तिः = वनगमनान्निवृत्तिः अवरोधः बभूवेत्येको गुणः। मम पितृपरवत्ता–पितृ पारतन्त्र्यम् स एव

तादृश एव इति द्वितीयो गुणः। मे बालभावः–पितरि स्थिते मम पुत्रभावोऽपि तादृगेवेति तृतीयो गुणः। नवनृपतिविमर्श–नवो यः नृपतिस्तस्य विमर्श = विचारे कीदृगयं नवीनो राजा इति चिन्ताविषये प्रजानां प्रकृतीनां शङ्का सम्भ्रमः नास्ति =इति बभूवेति चतुर्थो गुणः। अथ चापि मे भ्रातरः भरतादयः परिभोगः = राज्यसुखादिभोगैः न वञ्चिताः = न पृथक्भूताः पितृराज्यशासने सर्वेषां भ्रातृणां राज्यसुखावाप्तौ समानाधिकार इति भावः। अयं पञ्चमो गुणः। अभिषेक निवृत्तौ तद्गुणोदतायामेकस्यैव गुणस्य कथने पर्याप्तेऽनेकेषामुल्लेखात् समुच्चयालङ्कारः। मालिनीवृत्तम्। ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैरिति तल्लक्षणम् ।।14।।

अनुवाद –

राम – आर्य! सुनिये।

सर्वप्रथम तो उसके ऐसा करने से महाराज का वन जाना रुक गया। दूसरा यह कि मैं पिता के अधीनस्थ रह गया एवं बालभाव बना रहा। अब नवीन राजा के विषय में मेरा यह राजा कैसा होगा इस प्रकार की चिन्ता प्रजामण्डल को नहीं करनी पड़ेगी और मेरे भाई लोग राज्यसुख के उपभोग से वञ्चित नहीं हुए।।14।।

शब्दार्थ – पार्थिवस्यैव = राजा दशरथ का ही, वनगमननिवृत्तिः = वन जाने से रुकना, पितृपरवत्ता = पिता के अधीन रहना, बालभावः = शैशवकालीन भाव, नवनृपतिविमर्शः = नए राजा के विषय में सोचना, परिभोगैः = राजोचित भोग।

टिप्पणी – वनगमननिवृत्तिः = वनगमनात् निवृत्तिः (पञ्चमी तत्पुरुष समास), पितृपरवत्ता = पितुः परवत्ता (षष्ठी तत्पुरुष समास), नवनृपतिविमर्शः = नव नृपतेः विमर्शाः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पार्थिवस्येव = पार्थिवस्य+एव (वृद्धि सन्धि), तावन्मम = तावत्+मम (व्यंजन सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय अलंकार है। यहाँ मालिनी छन्द है।

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम्। अत्राप्यलोभः?

रामः – आर्य! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते। कुतः,

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते।
तस्याः लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ।।15।।

अन्वयः – शुल्के पुत्रार्थे विपणितं राज्यं यदि याच्यते अत्र तस्याः लोभः (किम्) भ्रातृ राज्यापहारिणाम् अस्माकं (लोभः) न? ।।15।।

व्याख्या – शुल्के = विवाहकालिककन्याग्रहणनेतन्यमूल्ये पुत्रार्थे = भाविपुत्रकृते विपणितं = पूर्व प्रतिश्रुतं राज्यं यदि तया याच्यते = प्रार्थ्यते तर्हि तस्याः = अम्बायाः कैकेय्याः अत्र विषये = राज्यप्रार्थनारूपे लोभः किम्? न कोऽपि लोभः इत्यर्थः। अत्र काकुः। भ्रातृराज्यापहारिणाम्–भ्रातुः–भरतस्य राज्यापहारिणाम् = राज्यमपहरन्तीति तच्छीलानां अस्माकं न लोभः। किमिति शेषः। कैकेय्याः विवाह काले हि अस्याम् संजनिष्यमाणः पुत्र एव राज्यभाग भविष्यतीति महाराजेन शुल्करूपेण प्रतिश्रुतम्। इति हेतोः न्यायतः भरतस्य राज्ये जन्मसिद्धोऽधिकारः इति। एवं राज्यप्रार्थने तस्या

लोभलवोऽपि नास्ति, प्रत्युत भरतस्य राज्यमधितिष्ठन्तो वयमेव दोषभाजः इति भावः। काक्वा वक्रोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः ।।15।।

अनुवाद –

कञ्चुकी – परन्तु उसने बिना बुलाये ही जो राजा से यह कहा कि राज्य शुल्क पर भरत का अभिषेक कीजिये क्या उसका यह अलोभ है ?

राम – आर्य! आप हमारे प्रति पक्षपात के कारण ही वास्तविक बात ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं।

यदि विवाह-शुल्क में अपने पुत्र के लिये वह राज्य माँगती है तो इसमें उसका क्या लोभ है। यदि इसे लोभ कहा जाये तो भाई के लिये प्रतिज्ञात राज्य को अपहरण करने वाले हम लोगों का भी लोभ क्यों नहीं।।15।।

शब्दार्थ – शुल्के = विवाह के समय वरपक्ष की ओर से कन्या के पिता आदि को दिया जाने वाला वचन, पुत्रार्थे = पुत्र के लिए, विपणितम् = प्रतिज्ञात, भ्रातृराज्यापहारिणाम् = भाई भरत के राज्य का अपहरण करने वाले, अस्माकम् = हम।

टिप्पणी – भ्रातृराज्यापहारिणाम् = भातुः राज्यं भ्रातृराज्यं तत् अपहरन्ति तेषाम् (तत्पुरुष गर्भ बहुव्रीहि), पुत्रार्थे = पुत्र+अर्थे (दीर्घ सन्धि), लोभोऽत्र = लोभः+अत्र (पूर्वरूप सन्धि), नास्माकं = न+अस्माकम् (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में काकु वक्रोक्ति है तथा अनुष्टुप् छन्द है।

बोध प्रश्न

1) प्रतिमानाटक के मंगलाचरण में भास कवि ने किसकी स्तुति की है?

.....

.....

.....

2) 'भद्रासने' पद में कौन सा समास है?

.....

.....

.....

3) 'क्लेदितम्' पद का क्या तात्पर्य है?

.....

.....

4) अभिषेक के लिए तीर्थजलपूर्ण घट किसने उठाया?

.....

.....

5) 'सूर्यरश्मयः' पद का समास विग्रह कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1) 'शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

8.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि सूत्रधार नाटक के आरम्भ में दर्शकों की मंगलकामना करता है। भास अपने नाटकों में नान्दी के व्याज से प्रमुख पात्रों का भी उल्लेख करते हैं। उनकी रचनाओं में अलंकार स्वभाविक रूप से आते हैं। भास बलात् अलंकारों के प्रयोग के पक्षधर नहीं हैं। प्रकृति का चित्रण करने में भी महाकवि भास सिद्धहस्त हैं। 'चरति पुलिनेषु हंसी' इत्यादि पद्य में उन्होंने ताश पुष्प और हंसी के औपम्य को बड़ी निपुणता के साथ निरूपित किया है। आपने इस इकाई में यह भी देखा कि राम के युवराज के रूप में अभिषेक की समस्त तैयारियाँ पूर्ण कर ली जाती हैं। वहाँ चवँर सहित छत्र, माँगलिक वाद्य, सिंहासन, दर्भ, पुष्प, मांगलिक तीर्थों के जल इत्यादि सभी कुछ उपस्थित कर दिया जाता है। नगरवासियों में यह प्रसन्नता फैल जाती है कि अब श्रीराम हमारे राजा होंगे। उसी समय औदातिका नामक दासी वल्कल लेकर प्रवेश करती है। सीता उससे पूछती हैं कि यह वल्कल तुम कहाँ से लाई हो? सीता उन वल्कलों को धारण भी करती हैं। कुछ ही देर बाद राम प्रविष्ट होते हैं और वह सीता को सूचना देते हैं कि राज्याभिषेक रोक दिया गया है। कवि यहाँ राम को अत्यधिक प्रसन्न मुद्रा में प्रस्तुत करता है। राम बताते हैं कि जब शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण ने तीर्थजल से परिपूर्ण घट को ले लिया तथा महाराज ने स्वयं आनन्दपूर्वक छत्र को अपने हाथों में सँभाला किन्तु मध्य में आकर दासी मन्थरा ने उनके कान में कुछ कहकर राज्याभिषेक को रुकवा दिया। राम सीता को वल्कल वस्त्र धारण किए हुए देखकर उनको धारण करने का कारण पूछते हैं। इन्हीं प्रसंगों के मध्य राम यह भी कहते हैं कि शत्रु शरीर में प्रहार करता है किन्तु स्वजन हृदय में प्रहार करता है। इस स्वजन शब्द का प्रयोग कहाँ किया जाए यह समझना अत्यन्त कठिन है। कंचुकी जब यह बताता है कि राम के राज्याभिषेक को रोकने का कार्य कैकेयी ने किया है तो वह स्पष्ट कहते हैं कि कैकेयी ऐसा दुष्कर्म नहीं कर सकती, उनका पति इन्द्र जैसा महान् है और मुझ जैसा उनका पुत्र है। ऐसा कार्य करके वह महाराज दशरथ को विपत्ति में नहीं डाल सकती। राम इस बात से प्रसन्न दिखते हैं कि मेरा राज्याभिषेक हो जाने पर शास्त्रीय नियम के अनुसार दशरथ वानप्रस्थ ले लेते और वन चले जाते किन्तु राज्याभिषेक रुक जाने के कारण यह अवांछित कार्य नहीं हुआ। मेरी बाल्यावस्था बनी रही और पिता जी भी राजा रह आये। राम अयोध्या के राज्य में भरत का ही अधिकार निरूपित करते हैं। इस प्रकार से आपकी यह इकाई समाप्त होती है। इसके आगे की घटना आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

8.4 शब्दावली

पुलिनेषु – तटों पर

भद्रासने – राजसिंहासन

मेदिन्याम् – पृथिवी पर

पटहे – नगाड़ा

वाष्पेण – आँसुओं से

सम्भ्रान्तया – हाँफती हुई

त्वरा – शीघ्रता से

आदर्श – दर्पण में

दैवेन – विधाता

अरिः – शत्रु

शक्रसमो – इन्द्र के समान

विपणितम् – प्रतिज्ञात

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

i) प्रतिमानाटकम् (अनु.) डॉ. श्री कृष्ण ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर ।

ii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) डॉ. सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006

iii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

iv) प्रतिमानाटकम् (सम्पा.) श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2016

v) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (ले.) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) प्रतिमानाटक के मंगलाचरण में भास कवि ने राम की स्तुति की है।

2) 'भद्रासने' पद में कर्मधारय समास है।

3) 'क्लेदितम्' पद का तात्पर्य है– गीला कर दिया।

4) अभिषेक के लिए तीर्थजलपूर्ण घट लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने उठाया।

5) 'सूर्यरश्मयः' पद का समास विग्रह है– सूर्यस्य रश्मयः।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 9 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – भाग 2

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – श्लोक 16-31

9.3 सारांश

9.4 शब्दावली

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- राम का कैकेयी और दशरथ के प्रति अनुराग जान सकेंगे।
- असमय में किए गए क्रोध को शमित करने की शिक्षा पा सकेंगे।
- परिवार का कोई भी ज्येष्ठ अपनी सन्तति के प्रति कभी अन्याय नहीं करता, यह भी जान सकेंगे।
- पारिवारिक सौमनस्य तथा भ्रातृ प्रेम के विषय में महाकवि भास के विचारों को जान सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! प्रथम इकाई में आपने पढ़ा कि राम का राज्याभिषेक मन्थरा के द्वारा कुछ कहे जाने पर महाराज दशरथ के द्वारा रोक दिया जाता है। उसी प्रसंग में राम यह भी बताते हैं कि भरत के लिए अयोध्या का राज्य वास्तव में शुल्क (विवाह के समय की गई शर्त) रूप में देने के लिए कह दिया गया था। किसी अन्य का उस पर राज्याभिषेक निश्चय ही भरत के राज्य के अपहरण जैसा है। आपने राम की उदारता का भी परिचय पूर्व इकाई में प्राप्त किया है। कैकेयी द्वारा वन के लिए भेजे जाने पर भी राम इस पर उसका दोष नहीं मानते। वह कहते हैं कि कैकेयी एक महनीय महिला है, उसका मुझ जैसा पुत्र है तथा इन्द्र जैसे प्रभावशाली महाराज दशरथ उनके पति हैं। ऐसे में उसके द्वारा किसी भी प्रकार के दुराचार की सम्भावना नहीं की जा सकती। इस इकाई में आप यह देखेंगे कि राम वन जाने के लिए सहर्ष उद्यत हो जाते हैं। कांचुकीय उनसे बताता है कि महाराज दशरथ आपको वनगमन के लिए आज्ञा देने को तत्पर नहीं थे इसलिए कैकेयी के हठ के बाद भी राजा दशरथ आपको वन जाने की अनुमति केवल हाथ के संकेतों से दिए हैं। तत्पश्चात् वह मूर्च्छित हो गए। महाकवि भास ने इस प्रसंग में लक्ष्मण के चरित्र को भी उभारा है। लक्ष्मण धैर्य के समुद्र हैं। वह कभी भी क्षुब्ध नहीं होते किन्तु राम के वनगमन के समय जब वह क्षुब्ध होते हैं तो भास उन्हें सैकड़ों वीरों के बराबर निरूपित करते हैं। लक्ष्मण राम को ललकारते हैं और कहते हैं कि आप धनुष उठायें, दया को छोड़ें और अपने साथ हो

रहे अन्याय का प्रत्युत्तर दें। इस पर राम पुनः उदारतापूर्वक कहते हैं कि मैं राजा बनूँ या भरत, दोनों बात बराबर है। अगर तुम्हें अपने धनुष पर इतना ही विश्वास है तो राजा भरत की सेवा करो और इस धनुष को उसके पक्ष में उठाओ। राम और लक्ष्मण के बीच चलने वाला यह संवाद दो भाइयों के प्रेम बन्धन को रेखांकित करता है तथा पारिवारिक सौमनस्य के सातत्य का प्रतीक है। लक्ष्मण के हठ पर राम यह कहकर उसे निरुत्तर कर देते हैं कि हे लक्ष्मण! क्या मैं सत्य का पालन करने वाले पिता के विरुद्ध धनुष उठाऊँ? अथवा विवाह शुल्क के रूप में प्रतिज्ञात राज्य माँगने वाली कैकेयी पर बाण चलाऊँ? तुम कहो कि क्या निर्दोष भाई भरत को मारा जा सकता है? ये तीनों पाप हैं और लक्ष्मण तुम यह बताओ कि तुम्हारी शान्ति के लिए इन तीनों में से कौन सा उपाय करूँ? वार्तालाप के इसी क्रम में राम वनगमन जैसे मंगलकार्य का सम्पादन करने को तत्पर होते हैं और सीता से वन ना जाने के लिए कहते हैं किन्तु लक्ष्मण उनकी इस बात से सहमत नहीं होते और सीता लक्ष्मण के साथ वनवास की वेशभूषा धारण कर लेती है और वन जाने के लिए तीनों प्रस्थान करते हैं।

9.2 प्रतिमानाटकम् (प्रथम अङ्क) – श्लोक 16-31

मूलपाठ –

काञ्चुकीयः – अथ।

रामः – अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम्।

काञ्चुकीयः – ततस्तदानीम्,

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ।।16।।

अन्वयः – राज्ञा शोकात् अवचनात् हस्तेन एव विसर्जितः। नृपतिः किमपि अभिमतं मोहं च उपगतः। इति मन्ये ।।16।।

व्याख्या – राज्ञा = महाराजदशरथेन शोकात् = कैकेयीयाचनाजनिताद् दुःखात् अवचनात्–वचनमनुक्तवैव शोकातिशयेन किमप्यनुक्तवेति भावः। हस्तेन = कर चेष्ट्या अहं विसर्जितः। 'गच्छ कैकेयीचरितं रामभद्राय निवेदय' इति वक्तुं अहं विसर्जितः = भवत्समीपं प्रेषितः। न तस्य तदा केवलं वाक्शक्तिविलुप्ता किन्तु सर्वेन्द्रियचेष्टाशून्यकारणभूतः मोहोऽप्यभूदित्याह–किमपीति। नृपतिः = दशरथः किमपि अभिमतम् कष्टतरात् प्रबोधात् किञ्चिदिष्टत्वेन मोहनं मूर्च्छनं च गतः = सम्प्राप्तः। चेतनादशायां हि दुःखमधिकं पीडयति नाचेतनावस्थायामिति तस्य तदानीं मोहमेवाभिमतमिति भावः। अत्र मोहस्य दुःखावेदकहेतोरिष्टत्वेन वर्णनात् अनुज्ञालङ्कारः। उत्कटगुणविशेषलालसया दोषत्वेन प्रसिद्धस्यापि वस्तुनः प्रार्थनामनुज्ञेति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः।।16।।

अनुवाद –

कञ्चुकी – और।

राम – आर्य! इससे अधिक मैं माँ की निन्दा नहीं सुनना चाहता। अतः आप महाराज का समाचार सुनाइये।

कञ्चुकी – तब उसी समय

शोक के कारण सर्वथा बोलने में असमर्थ महाराज ने हाथ के संकेत से कैकयी के इस प्रकार के विचार से अवगत कराने के लिये मुझे आपके पास भेज दिया और स्वयं मूर्च्छित हो गये जो उस समय उनके लिये कुछ अभीष्ट बन गया।।16।।

शब्दार्थ – शोकात् = शोक के कारण, अवचनात् = न बोल पाने के कारण, हस्तेन इव = हाथों के संकेत से, विसर्जितः = जाने की आज्ञा दिया, नृपतिः = राजा दशरथ, अभिमतम् = अभीष्ट, मोहम् = मूर्च्छित होना।

टिप्पणी – नृपतिः = नृणां पतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), हस्तेनैव = हस्तेन+एव (वृद्धि सन्धि), किमप्यभिमतम् = किमपि+अभिमतम् (यण् सन्धि), नृपतिर्गतः = नृपतिः+गतः (विसर्ग सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में अनुज्ञा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है।

मूलपाठ –

रामः – कथं मोहमुपगतः?

(नेपथ्ये)

कथं कथं मोहमुपगत इति?

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया,

रामः – (आकर्ण्य पुरतो विलोक्य)

अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः।।17।।

अन्वयः – अक्षोभ्यः धैर्यसागरः लक्ष्मणः केन क्षोभितः। रुष्टेन येन अग्रतः शताकीर्णम् इव पश्यामि ।।17।।

व्याख्या – अक्षोभ्यः इति – अक्षोभ्यः = क्षोभयितुं योग्यः क्षोभ्यः न क्षोभ्यः अक्षोभ्यः सर्वथा विकाररहितः शान्त इत्यर्थः धैर्यसागरः–धैर्यस्य = धीरतायाः सागरः = समुद्रः अतिगम्भीरस्वभावो लक्ष्मणः, केन क्षोभितः = केन कोपितः। रुष्टेन = क्रुद्धेन येन तिष्ठता, अग्रतः = अग्रदेशे शताकीर्णम्–शतेन आकीर्णम् = व्याप्तम् इव पश्यामि। रुष्ट एक एव लक्ष्मणः गर्जन् जनशतस्य गर्जनमिव गर्जनं करोतीत्यर्थः। धैर्यसागर इत्यत्र रूपकालङ्कारः। 'रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे' इति तल्लक्षणम्। शताकीणमिवेत्यत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्' इति तल्लक्षणम्। अक्षोभ्यः क्षोभित इति विरोधाभासोऽपि। 'आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते' इति तल्लक्षणम्। अनुष्टुप् छन्दः।।17।।

अनुवाद –

राम – क्या मूर्च्छित हो गये।

(नेपथ्य के भीतर से)

क्या-क्या मूर्च्छित हो गये। यदि राजा का इस प्रकार मूर्च्छित होना तुम्हारी सहनशक्ति के बाहर है तो जिस कारण से इन्हें मूर्च्छा हुई है उसके प्रतीकार के लिये धनुष उठाओ– दया मत करो।

राम – (सुनकर और सामने देखकर) धैर्य में अगाध, समुद्र के समान गम्भीर इन लक्ष्मण को किसने क्षुब्ध किया है, पर इनके अकेले क्रुद्ध होने पर मैं इन्हें अपने आगे सौ वीरों के समान देख रहा हूँ।।17।।

शब्दार्थ – अक्षोभ्यः = उत्तेजित न किया जाने वाला, धैर्यसागरः = धैर्य का समुद्र, केन = किसके द्वारा, क्षोभितः = संक्षुब्ध कर दिया गया, शताकीर्ण = सैकड़ों वीरों को।

टिप्पणी – धैर्यसागरः = धैर्यस्य सागरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), इवाग्रतः = इव+अग्रतः (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ– **(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः)**

लक्ष्मणः – (सक्रोधम्) कथं कथं मोहमुपगत इति।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ।।18।।

अन्वयः – यदि राज्ञः मोहं न सहसे चेत् तदा तन्मोहकारणे धनुः स्पृश। तत्र दया मा अस्तु। स्वजननिभृतः सर्वः अपि मृदुः एवं परिभूयते अथ न रुचितं तर्हि त्वं मां मुञ्च। अहं युवतिरहितं लोकं कर्तुं कृतनिश्चयः अस्मि। यतः वयम् छलिताः।

व्याख्या – यदीति। यदि राज्ञः = तातस्य, मोहम् = विसंज्ञतां, न सहसे = न मर्षयसि चेत्, धनुः स्पृश = चापास्फालनं कुरु। मोहहेतुजने चापं व्यापारय न तु मोहिते इत्यर्थः। एतेन मोहप्रतीकाराय धनुगृहीत्वा सन्निधो भवेति व्यज्यते। तत्र दया मा अस्त्विति शेषः। त्वया मोहकारणभूते जने दया न कर्त्तव्येति भावः। स्वजने निभृतः = मौनीभूतः स्वजनकृतं सर्वं सहमानः सर्वोऽपि भवादृशः मृदुः, दयालुः, क्षमावान् एवं अनेन प्रकारेण, परिभूयते तिरस्क्रियते। पक्षान्तरे आह– यदि न रुचितम् स्वजनविषये चापग्रहणं भवते = नाभिलषितं तर्हि मां मुञ्च = आज्ञापय। अहं, लोकम्, युवतिरहितं = युवतिजनशून्यम्, कर्तुम् = सम्पादयितुम्, कृतनिश्चयः अस्मि। युवतिजने प्रद्वेषकारणं निरूपयन्नाह– यत् इति। यतः यस्मात् कारणात् वयं छलिताः वञ्चिताः सन्। अत्र धनुग्रहणे दयापरित्यागरूपे वाक्यार्थेः यतश्छलिता वयम् इति वाक्यार्थो हेतुः तेन काव्यलिङ्ग नामालङ्कारः। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते' इति तल्लक्षणम्। हरिणीवृत्तम्।।18।।

अनुवाद – (धनुष-बाण हाथ में लिये लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण – (क्रोधपूर्वक) क्या? क्या? आप पूछते हैं कि अचेत कैसे हो गये?

यदि राजा का इस प्रकार मूर्च्छित होना आपकी सहनशीलता के बाहर है तो मूर्च्छित होने के कारण का प्रतीकार करने के लिये धनुष उठाइये, उस पर दया किसलिये? स्वजनों के विषय में चुप रहकर सहन करने वाला तथा कोमल स्वभाववाला पुरुष इसी प्रकार तिरस्कृत होता है किन्तु यदि आप स्वयं प्रतीकार नहीं करना चाहते तो मुझे आज्ञा दीजिये। मैंने इस लोक को युवतिजनों से शून्य करने का निश्चय कर लिया है क्योंकि युवती के कारण ही हम लोग आज छले जा रहे हैं ।।18।।

शब्दार्थ – यदि राज्ञः = महाराज दशरथ का, मोहम् = मूर्च्छित होना, न सहसे = सहन नहीं कर सकते, धनुःस्पृश = धनुष धारण करो, मा दया = दया मत करो, स्वजननिभृतः = स्वजनों के कृत्यों को शान्तिपूर्वक सहन करना, मृदुः = कोमल स्वभाव वाले लोग, एवं परिभूयते = इस प्रकार से पराजित होते हैं, न रुचितम् = यदि रुचिकर नहीं लगा, माम् मुञ्च = मुझे छोड़ दो, अहं लोकम् = मैं इस लोक को, युवतिरहितम् = स्त्रियों से रहित, कृतनिश्चयः = दृढ़ निश्चय करना, छलिताः = छलपूर्वक।

टिप्पणी – सर्वोऽपि = सर्वः+अपि (पूर्वरूप सन्धि), सर्वोऽप्येवं = सर्वोऽपि+एवम् (यण् सन्धि), यतश्छलिताः = यतः+छलिताः (विसर्ग सन्धि), कृतनिश्चयः = कृतः निश्चयः येन सः (बहुव्रीहि समास), स्वजननिभृतः = स्वजनेषु निभृतः (सप्तमी तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ हरिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''रसयुगहयैर्नसो म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा''** अर्थात् जिस छन्द में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण हों तथा छः, चार और सप्तम वर्णों पर यति हो वह हरिणी छन्द कहलाता है।

मूलपाठ –

सीता – आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम् । अपूर्वः खल्वस्यायासः। (अय्यउत्त! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं। अपूव्वो क्खु से आआसो।)

अनुवाद –

सीता – आर्यपुत्र! लक्ष्मण ने इस रोने के अवसर पर अपना धनुष उठाया है। इनका इस प्रकार का क्षोभ तो इससे पहले कभी नहीं देखा गया।

मूलपाठ –

रामः – सुमित्रामातः! किमिदम्?

लक्ष्मणः – कथं कथं किमिदम्?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता? ।।19।।

अन्वयः – क्रमप्राप्ते राज्ये ह्रते नृपे भुवि शोच्यासने इदानीम् अपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ।।19।।

व्याख्या – क्रमप्राप्ते–'क्रमेण पितुरनन्तरम् ज्येष्ठजातेन राज्यम् प्राप्तव्यम्' इत्येवं रूपेण प्राप्ते राज्ये ह्रते = संछिन्ने सति। नृपे – राज्ञि भुवि = भूतले शोच्यासने–शोच्यम्–शोकाहम् आसनम् = स्थितिर्यस्य तस्मिन् तथाभूते न तु सुखासने इदानीमपि = अस्यामपि स्थितौ, सन्देहः प्रतीकारनिश्चयाभावः। किं क्षमा नाम निर्मनस्विता आत्माभिमानशून्या। नैवेत्यर्थः। वीरा हि क्षमाकृते स्वाभिमानं न त्यजन्ति। भवतापि स्वाभिमानशून्या क्षमा नालम्बनीया वीरजनस्यानुचितत्वान्। अतः तत्र प्रतीकारपरो भव। सन्देहो न कर्त्तव्यः इति भावः। यथा एतादृश्याम् स्पष्टापकारितायां प्रकटं प्रतीतायामपि तव कर्तव्यानवधारणरूपः सन्देहः क्षमया गौरवभावशून्यतया वा प्रसूतः इति न ज्ञातुं शक्नोमीति तात्पर्यम्। समुच्चयालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।।19।।

अनुवाद –

राम – सुमित्रानन्दन यह क्या?

लक्ष्मण – क्यों क्या अब भी पूछ रहे हैं कि यह क्या?

वंशपरम्परा के क्रम से प्राप्त राज्य छीन लिया गया। महाराज भी शोचनीय अवस्था में पृथ्वी पर पड़े हुए हैं तब भी आप किमिदम् कहकर सन्देह कर रहे हैं। इस प्रकार का सन्देह क्या क्षमा का फल है अथवा स्वाभिमानशून्यता का फल है।।19।।

शब्दार्थ – क्रमप्राप्त = परम्परा के क्रम से प्राप्त, राज्ये = राज्य के, ह्रते = हरण कर लिए जाने वाले, नृपे = राजा दशरथ के, भुवि = भूमि पर, शोच्यासने = शोचनीय अवस्था में होने पर, इदानीमपि = अब भी, निर्मनस्विता = स्वाभिमान से शून्य होना।

टिप्पणी – क्रमप्राप्तः = क्रमेण प्राप्तः (तृतीया तत्पुरुष समास), शोच्यासने = शोच्य+आसने (दीर्घ सन्धि), निर्मनस्विता = निर्गता मनस्विता यस्मात् (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

रामः – सुमित्रामातः! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति। आः, अपण्डितः खलु भवान्।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ।।20।।

अन्वयः – भरतो वा राजा भवेत् वयं वा। ननु तत् समम्। यदि ते धनुःश्लाघा अस्ति तदा स राजा परिपाल्यताम्।।20।।

व्याख्या – भरतो वा राजा भवेत् वयं वा राजानो भवेम। तदन्यतराभिषेचनम् समम् = तुल्यम् ननु निश्चये। यदि ते धनुःश्लाघा = धनुषो गर्वः अस्ति तदा स राजा नवाभिषिक्तः भरतः परिपाल्यताम् तस्य सहायको भूत्वान्तरेभ्यो बाह्येभ्यश्च विघ्नेभ्यः रक्ष्यतामित्यर्थः किञ्च मद्विषये त्वया चिन्ता न कार्या। रोषम् कोपावेगम्। धारयितुम् = नियन्तुम्। न शक्नोमि तदत्र स्थित्वालमन्यत्राऽवस्थितेन किमप्यन्यदवाच्यमुच्येत। अकार्यं वा क्रियते तदन्यतो प्रस्थीयते इत्यर्थः।।20।।

अनुवाद –

राम – सुमित्रानन्दन! हमारे राज्य से विभ्रष्ट हो जाने के कारण तुम इस प्रकार उत्तेजित होकर प्रयत्नशील हो। आप बुद्धिमान् नहीं हैं।

चाहे भरत को राज्य मिले अथवा मुझ राम को दोनों बातें एक समान ही हैं यदि तुम्हें अपने धनुष पर अभिमान है तो इस धनुष से राजा भरत की रक्षा करो ।।20।।

शब्दार्थ – भरतः = भरत, वा = अथवा, समम् = समान होना, ते = लक्ष्मण की, धनुःश्लाघा = धनुर्विद्या पर गर्व होना, राजा = भरत।

टिप्पणी – धनुःश्लाघा = धनुषः श्लाघा (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेऽस्ति = ते+अस्ति (पूर्वरूप सन्धि), भरतो वा = भरतः+वा (विसर्ग सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

लक्ष्मणः – न शक्नोमि रोषं धारयितुम्। भवतु भवतु। गच्छामस्तावत् । (प्रस्थितः)

रामः – त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।

भ्रकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ।।21।।

अन्वयः – त्रैलोक्यं दग्धुकामा इव ललाटपुटसंस्थिता एषा लक्ष्मणस्य भ्रकुटिः नियती इव व्यवस्थिता ।।21।।

व्याख्या – त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम् = भुवनत्रयम् दग्धुकामेव दग्धु कामो यस्या सा दग्धुकामा दिधक्षन्ती इव ललाटपुटसंस्थिता = कपालमध्यसंस्थिता एषा प्रत्यक्षदृश्या लक्ष्मणस्य भ्रकुटिः नियती इव = विधिरेखा इव व्यवस्थिता समुद्यता। ललाटपुटसंस्थिता इति नियत्यामपि विशेषणत्वेन योज्यं नियत्यपि ललाटपुटमध्ये एवं संतिष्ठते। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।।21।।

अनुवाद –

लक्ष्मण – मैं इस समय अपना क्रोध रोकने में असमर्थ हूँ। तो ठीक है, इस समय अन्यत्र जाता हूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान करना चाहते हैं।)

राम – समस्त त्रिलोक को भस्म करने की इच्छा करती हुई ललाट तक चढ़ी हुई लक्ष्मण की ये टेढी भौंहे भाग्यरेखा के समान अपने निश्चय पर दृढ हैं। अच्छा लक्ष्मण, इधर तो आओ।।21।।

शब्दार्थ – त्रैलोक्यम् = तीनों लोकों को, दग्धुकामेव = जलाने के लिए उद्यत हुई थी, ललाटपुटसंस्थिता = मस्तक पर स्थित, भ्रकुटिः = भौंहें, नियतीव = भाग्य के समान।

टिप्पणी – दग्धुकामा = दग्धु कामाः यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), भ्रकुटिः = भ्रुवोः कौटिल्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), ललाटपुटसंस्थिता = ललाट पुटे संस्थिता (सप्तमी तत्पुरुष समास), दग्धुकामेव = दग्धुकामा+एव (गुण सन्धि), लक्ष्मणस्यैषा = लक्ष्मणस्य+एषा (वृद्धि सन्धि), नियतीव = नियति+इव (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

सुमित्रामातः! इतस्तावत्।

लक्ष्मणः – आर्य? अयमस्मि।

रामः – भवतः स्थैर्यमुत्पादयता मयैवमभिहितम्।

ताते धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु।।22।।

अन्वयः – सत्यमवेक्षमाणे ताते धनुः नमयि। वा स्वधनं हरन्त्यां मातरि शरं मुञ्चानि। वा दोषेषु बाह्ययम् अनुजं भरतं हनानि। एषु त्रिषु पातकेषु रोषणाय तव किं रुचिरम्।।22।।

व्याख्या – सत्यं पूर्वं प्रतिज्ञातवचनम् अवेक्षमाणे द्रष्टरि पालयतीत्यर्थः। ताते पितरि दशरथे धनुः चापम् नमयि नमयानि अत्र 'नमयि' इत्यपाठः। यद्वा ताते धनुः मयि न इत्येवं विगृह्यान्वयः कार्यः। स्वधनं विवाहकाले प्रतिज्ञातकारणेन समस्तमेतद्राज्यं तदीयमेवेति तादृशं राज्यम् अपहरन्त्याम् = आददन्त्याम् मातरि = कैकेय्यां शरं मुञ्चानि प्रश्नकाकुः वा दोषेषु दोषेभ्यः बाह्यं बहिर्भूतम् निर्दोषमिति यावत् भरतं हनानि किम् हन्याम् किम् इत्यत्रापि काकुः। एषु पूर्वोक्तेषु त्रिषु पातकेषु पितृमातृभ्रातृवधेषु किं कतमद् तव रोषणाय कोपनाय रुचिरम् अभीष्टम् मनः प्रसादकारकमिति भावः। पापमूलकोऽयं तव रोषः निर्दोषेष्वेषु त्रिषु कमप्येक हत्वा पापमेवार्जयेदित्यर्थः। तथा हि तातः प्रतिश्रुतमेव राज्यमर्पयति तेन स्वप्रतिज्ञा पालनं करोति। माता च शुल्करूपेण स्वस्यै प्रतिज्ञातमत एव स्वकीयमेव धनं हरति। भरतस्तु राज्यापहारविषये न किमपि जानाति अतः एषु निरपराधस्य कस्यापि वधः गर्हित एव भवेदित्यर्थः। अत्र विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।।22।।

अनुवाद –

लक्ष्मण जरा इधर तो आना।

लक्ष्मण – आर्य! यह आया।

राम – तुम्हारे क्रोध को शान्त करने के लिये ही मैंने ऐसा कहा है। अब तुम्हीं बताओ कि क्या पिताजी पर धनुष उठाया जाये जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहते हैं, या माता पर बाण चलाया जाये जो (विवाहशुल्क में पूर्व प्रतिज्ञात) अपना धन राजा से चाह रही है अथवा अनुज भरत को ही मारा जाये जो सभी प्रकार के दोषों से रहित है, इस प्रकार पितृ, मातृ एवं भ्रातृवध रूप इन तीनों पापों में कौन सा पाप तुम्हारे रोष को शान्त करने के लिये अभिमत हो सकता है।।22।।

शब्दार्थ – अवेक्षमाणे = विचार, मुञ्चानि = छोड़ूँ, मातरि = माता कैकेयी का, स्वधनम् = अपने राज्य को, दोषेषु = दोष होने पर, रोषणाय = क्रोध के लिए, त्रिषु पातकेषु = तीनों पाप (माता वध, पिता वध, अनुज वध)

टिप्पणी – स्वधनम् = स्वस्य धनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अवेक्षमाणे = सप्तमी विभक्ति एकवचन, हरन्त्याम् = सप्तमी विभक्ति एकवचन, रोषणाय = चतुर्थी विभक्ति एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में परिकर अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलता छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।''** अर्थात् जिस छन्द में तगण, भगण, जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण हों, तो वह वसन्ततिलका छन्द है।

मूलपाठ –

लक्ष्मणः – (सबाष्पम्) हा धिक्! अस्मान् अविज्ञायोपालभसे।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः।

वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ।।23।।

अन्वयः – यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे मनोरथः न। चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यं किल।

व्याख्या–यत्कृते–यत्कृते येन कारणेन कृते आर्येण समुत्पादिते महति दुरन्ते क्लेशे खेदे पितृमोहप्राप्तिरूपे दुःखे राज्ये राज्यविषये मे मम मनोरथः नास्ति। नेदं राज्यापहरणं मद्रोषकारणम् किन्तु पितृपादानां मोहप्राप्तिरेव। पितृमोहप्राप्तौ हेतुमाह चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यं किल। इयं कैकेयी भरताय राज्यं याचमाना तावन्मात्रेणैव न सन्तुष्टा किन्तु भवत्कृते चतुर्दशवर्षपर्यन्तं वनवासमपिप्रार्थितवती, यदर्थे पितृपादानां मोहप्राप्तिरित्यस्मदुःखकारणमित्यर्थः। लक्ष्मणेन स्वकोपकारणे निवेदिते रामोऽपि राज्ञो मोहकारणं चतुर्दशवर्षपर्यन्तं स्वकीयवनवासमत्वाह–अत्रेत्यादि। अत्र अस्मिन्नेवार्थे चतुर्दशवर्षवनवासविषये न तु मदभिषेक विघातविषये। तत्र भवान् पूज्यः पिता। हन्त इति खेदे। निवेदितम् प्रकटितम्। अप्रभुत्वम् अधीरत्वम्। राज्ञोऽधीरतव रामस्य खेदविषयः इत्यर्थः।।23।।

अनुवाद –

लक्ष्मण – (रुंधे कण्ठ से) हाय! मेरा अभिप्राय न जानकर उलाहना दे रहे हैं जिसके लिये आपको अथवा पिताजी को इतना बड़ा क्लेश हो रहा है उस राज्य के प्रति हमारी अभिलाषा नहीं है, किन्तु मुझे दुःख इस बात का है कि आपको चौदह वर्षपर्यन्त वन में रहना पड़ेगा (जो विवाह-शुल्क की परिधि से बाहर है)।।23।।

शब्दार्थ – यत्कृते = जिस कारण से, महति क्लेशे = अत्यन्त कष्टप्रद दुःख, राज्ये = राज्य प्राप्ति, मनोरथः न = अभिलाषा नहीं है, वने = जंगल में।

टिप्पणी – यत्कृते = यस्य कृते (षष्ठी तत्पुरुष समास), त्वया = युष्मद् शब्द, तृतीया विभक्ति एकवचन, वर्षाणि = प्रथमा विभक्ति बहुवचन, महति = सप्तमी विभक्ति एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

रामः – अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान्? हन्त! निवेदितमप्रभुत्वम्। मैथिलि!

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय।

करोम्यन्यैनृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम्।।24।।

अन्वयः – अनया दत्तान् वल्कलान् चीराणि मङ्गलार्थे आनय तावद् अन्यैः नृपैः नैवाप्तम् नैवोपपादितं धर्मं करोमि ।।24।।

व्याख्या – मङ्गलार्थे इति–अनया अवदातिकया चेट्या दत्ताम् समाहृताम् वल्कलान् चीराणि मङ्गलार्थे वनवासानुष्ठाननिर्विघ्नसमाप्त्यर्थं यद् मङ्गलं तदर्थे, आनय तावत् मह्यं देहि। वने वसन्नहम् तपः आचरिष्यामि तत्रायं वल्कलो मे मङ्गलं करोतु नामेत्यर्थः। अन्यैः पूर्वजैः नृपैः राजभिः नैवाप्तम् नावसरो लब्धः। नोपपादितम् न चाचरितम् एवं भूतं धर्मम् आचरामि। अयं भावः–मत्पूर्वजाः 'वार्धक्ये मुनिवृत्तीना'मिति कालिदाससूक्तरीत्या वृद्धावस्थायां वल्कलं परिधाय मुनिवृत्तयः भवन्ति मया तु किशोरावस्थायामेवायमवसरो लब्धः। किञ्चैतादृशं चतुर्दशवर्षपर्यन्तं वनवासरूपपित्राज्ञापालनव्रतमपि न केनचिदनुष्ठितम्। मया तु प्राप्तमेवेति सर्वापेक्षया स्वोत्कर्षः सूच्यते। व्यतिरेकालङ्कारो व्यङ्ग्यः। अनुष्टुप् छन्दः।।24।।

अनुवाद –

राम – क्या मेरे वनवास के कारण महाराज मूर्च्छित हो गये। तब तो बड़ा शोक है। उन्होंने अपनी अधीरता ही प्रकट कर दी।

अच्छा मैथिलि!

इस समय उपस्थित हुए इस मङ्गल कार्य के लिये अवदातिका द्वारा लाये गये वल्कल मुझे दो। इसे धारण कर मैं ऐसे धर्म का आचरण करूँगा जिसे किसी अन्य राजा ने आज तक न तो प्राप्त किया है और न आचरण करके दिखाया ही है।।24।।

शब्दार्थ – अनया = इस सेविका के द्वारा, दत्तान् = दिए गए, वल्कलान् = वल्कल वस्त्रों को, मङ्गलार्थे = मंगल के लिए, आनय = लाओ, अन्यैनृपैः = अन्य पूर्ववर्ती राजाओं के द्वारा, नैवाप्तम् = नहीं दिया गया, नोपपादितम् = न ही धारण किया गया।

टिप्पणी – मङ्गलार्थे = मङ्गल एव अर्थः यस्य (बहुव्रीहि समास), नोपपादितम् = न+उपपादितम् (गुण सन्धि), वल्कलांस्तावद् = वल्कलाः+तावद् (विसर्ग सन्धि), करोम्यन्यै = करोमि+अन्यै (यण् सन्धि), नैवाप्तम् = न+एवाप्तम् (वृद्धि सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

सीता – गृह्णात्वार्यपुत्रः। (गृह्णदु अय्यउत्तो।)

रामः – मैथिलि! किं व्यवसितम्?

सीता – ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्। (णं सहधम्मआरिणी क्खु अहं।)

रामः – मयैकाकिना किल गन्तव्यम्।

सीता – अतो न खल्वनुगच्छामि? (अदो णु क्खु अनुगच्छामि।)

अनुवाद –

सीता – आर्यपुत्र! यह है वल्कल, लीजिये।

राम – मैथिलि! अब तुमने क्या निश्चय किया है?

सीता – मैं तो आपके साथ ही धर्माचरण करूँगी।

राम – परन्तु मुझे तो अकेले ही वन जाने को कहा गया है।

सीता – इसीलिये तो मुझे आपके साथ चलना है।

मूलपाठ –

रामः – वने खलु वस्तव्यम्।

सीता – तत् खलु मे प्रासादः। (तं क्खु मे पासादो।)

रामः – श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषापि च ते निर्वर्तयितव्या?

सीता – एनामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते। (णं उद्दिसअ देवदानं पणामो करीअदि।)

रामः – लक्ष्मण! वार्यतामियम्।

लक्ष्मणः – आर्य! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम्। कुतः –

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः।।25।।

अन्वयः – तारा शशाङ्कं राहुदोषेऽपि अनुचरति। किञ्च वनवृक्षे पतति लता भूमिं याति। करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं च न त्यजति। व्रजतु धर्मं चरतु हि नार्यः भर्तृनाथा भवन्ति।।25।।

व्याख्या – अनुचरत्विति–तारा = चन्द्रपत्नी रोहिणी। शशाङ्कम् = जन्म राहुदोषेऽपि राहुकृतोपरागदोषेऽपि आपत्तिकालेऽपीत्यर्थः। अनुचरति = अनुगच्छति, न तु स्वामिनं विपद्ग्रस्तं दृष्ट्वा तं त्यजति। वनवृक्षे = वन्ये तरौ, पतति सति, लता = वल्लरी च तेन सहैव भूमिं याति = निपतति। करेणुः = हस्तिनी पङ्कलग्नं पङ्के लग्नम् पङ्कलग्नम् = कर्दमनिमग्नं गजेन्द्रम् न त्यजति नैव मुञ्चति। विपन्नावस्थायामपि तमनुसरत्येव। अतः इयं वनं व्रजतु स्वपतिना सह गच्छतु। धर्मं पत्यनुसरणरूपं पातिव्रत्यरूपं च चरतु = विदवातु। उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थः यति–हि नार्यः = स्त्रियः भर्तृनाथाः = स्वामिपरतन्त्राः तदनुवृत्तिता समदुःखसुखता च तासाम् सदोचितैवेति भावः। अत्र सामान्येन विशेषस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासः। हि शब्दः अस्यार्थस्य प्रसिद्धतां व्यनक्ति। 'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते। यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।' इति तल्लक्षणम्। किञ्च 'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनमिति' लक्षणात् दृष्टान्तोऽपि।।25।।

अनुवाद –

राम – किन्तु वन में निवास करना होगा।

सीता – वह तो मुझे प्रासाद जैसा सुखदायी होगा।

राम – सास और ससुर की सेवा करना भी तो तुम्हारा धर्म है।

सीता – इस सेवा के लिये तो मैं देवताओं को ही प्रणाम करूँगी।

राम – लक्ष्मण! इन सीता को ऐसा करने से रोको।

लक्ष्मण – ऐसे शुभ अवसर के प्राप्त होने पर तत्र भवती आर्या को रोकने का साहस नहीं होता क्योंकि रोहिणी राहुग्रहणजन्य विपत्ति से ग्रस्त होने पर भी चन्द्रमा का अनुसरण करती है, लता पेड़ के गिरने पर उसके साथ ही पृथ्वी पर स्वयं भी गिर जाती है, हथिनी अपने हाथी को कीचड़ में फंसा देखकर कभी उसका परित्याग नहीं करती इसलिये इन्हें भी अपने साथ चलने दीजिये और पातिव्रत्य-धर्म का पालन करने दीजिये क्योंकि स्त्री का पति ही सर्वस्व है।।25।।

शब्दार्थ – राहुदोषेऽपि = राहु के द्वारा ग्रस्त हो जाने पर भी, शशाङ्कम् = चन्द्रमा का, वनवृक्षे = जंगल के पेड़ के, पतति = गिर जाने पर भी, करेणुः = हस्तिनी, पङ्कलग्नम्= कीचड़ से लिपटे हुए, गजेन्द्रम् = गजराज को, न च त्यजति = नहीं छोड़ती, भर्तृनाथा = पति पर ही आश्रित।

टिप्पणी – पङ्कलग्नम् = पङ्के लग्नम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजेन्द्रम् = गजानां इन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुष समास), भर्तृनाथा = भर्ता नाथः यासां ताः (बहुव्रीहि समास), राहुदोषः = राहुः दोषः (तृतीया तत्पुरुष समास), राहुदोषेऽपि = राहुदोषे+अपि (पूर्वरूप सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त अलंकार है। यहाँ मालिनी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः''** अर्थात् जहाँ दो नगण, एक मगण और दो यगण हों, वहाँ मालिनी छन्द होता है।

मूलपाठ – **(प्रविश्य)**

चेटी – जयतु भट्टिनी। नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति–अवदातिकया सङ्गीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीताः। इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः। निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति। (जेदु भट्टिणी। णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि–ओदादिआए सङ्गीदसालादो आच्छिन्दिअ वक्कला आणीदा। इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला। णिब्बत्तीअदु दाव किल पओअणं त्ति।)

रामः – भद्रे! आनय, सन्तुष्टैषा। वयमर्थिनः।

चेटी – गृह्णातु भर्ता। (गृह्णादु भट्टा।) (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

(रामो गृहीत्वा परिधत्ते)

अनुवाद – (चेटी का प्रवेश)

चेटी – जय हो महारानी जी की। नेपथ्य की रक्षिका आर्यरेवा प्रणामपूर्वक निवेदन कर रही हैं कि अवदातिका संगीतशाला से वल्कल चुराकर लाई है। ये दूसरे वल्कल हैं जो सर्वथा नवीन हैं। अतः इसी से अपनी आवश्यकता पूरी कीजिये।

राम – भद्रे, तो लाओ यह तो वल्कल पहनकर अपना मनोरथ पूर्ण कर चुकी है किन्तु इसकी हमें ही आवश्यकता है।

चेटी – लीजिये प्रभु। (वल्कल देकर प्रस्थान करती है) .

(राम लेकर वल्कल धारण करते हैं)

मूलपाठ –

लक्ष्मणः – प्रसीदत्वार्यः।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे।
चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ।।26।।

अन्वयः – निर्योगात् भूषणात् माल्यात् सर्वेभ्यः अर्धं मे प्रदाय एकाकिना चीरं बद्धम्। चीरे खलु मत्सरी असि।।26।।

व्याख्या – निर्योगात्=वस्त्रकञ्चुकाद्याच्छादनोपयोगिवसनात् भूषणात्= कटककुण्डलादेरलङ्कारात्, माल्यात् = पुष्पस्रजः एभ्यः सर्वेभ्यः मे = मह्यम् अर्धं प्रदाय = दत्त्वा भवतैतानि परिगृह्यन्ते किन्तु एकाकिना केवलेन मह्यमप्रदायैव चीरम् = वल्कलं बद्धम् = परिहितम्। बहुमूल्यवस्त्राभरणादीनि संविभज्य भवता वार्यते इति दृष्टपूर्वः स्वभावः किन्तु अतिहीनमूल्यस्य वल्कलस्य संविभागमकृत्वा तत् केवलमेकाकी एव धारयसीति स्वार्थबुद्धित्वात् मे महान् खेद इत्याह–चीरे = वल्कले। खलु विषादार्थकमव्ययपदम्। मत्सरी = मत्सरेण युक्तः इदमपि मह्यं प्रदाय मया सहैव वनं गच्छेति लक्ष्मणाभिप्रायः। पर्यायोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टप् छन्दः।।26।।

अनुवाद –

लक्ष्मण – आर्य मुझ पर प्रसन्न हों।

नाना प्रकार के वस्त्राभूषण माला आदि समस्त भोग्य वस्तुओं को मुझे आधा देकर तब आप धारण करते थे किन्तु इस वल्कल को मुझे दिये बिना ही आपने-अकेले पहन लिया अतः इस प्रकार की मत्सरता क्यों?।।26।।

शब्दार्थ – निर्योगाद् = वस्त्रादि से, भूषणात् = आभूषणों से, माल्यात् = माला आदि से, सर्वेभ्यः = समस्त वस्तुओं में से, मे = मुझे, अर्द्धं प्रदाय = आधा हिस्सा देकर, चीरम् = वल्कल वस्त्र, एकाकिना = अकेले ही, बद्धम् = धारण कर लिया, मत्सरी = लालची।

टिप्पणी – सर्वेभ्योऽर्धम् = सर्वेभ्यः+अर्धम् (पूर्वरूप सन्धि), खल्वसि = खलु+असि (यण् सन्धि), भूषणान्माल्यात् = भूषणात्+माल्यात् (व्यंजन सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में पर्यायोक्ति अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

रामः – मैथिलि! वार्यतामयम्।

सीता – सौमित्रे! निवर्त्यतां किल। (सौमित्रे! णिवत्तीअदु किल।)

लक्ष्मणः – आर्ये!

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि?।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति।।27।।

अन्वयः – त्वम् एका मे गुरोः पादशुश्रूषां कर्तुम् इच्छसि। तव दक्षिणः पादः एषः सव्यः मम भविष्यति ।। २७ ।।

व्याख्या–त्वम् एका = एकाकिनी केवला मे = मम गुरोः पूज्यस्य ज्येष्ठ भ्रातुः पादशुश्रूषाम् = चरणसंवाहनादिपरिचर्यां कर्तुम् = विधातुम् इच्छसि = अभिलषसि,

एकाकिनी त्वमेव मे पूज्यस्य चरणसेवितुकामा, मामुक्तकार्यावसरतो वञ्चयसीति नोचितमित्यर्थः। अतः अत्रापि संविभागः कर्तव्य इत्याह–तव दक्षिणः पादः 'मम च एषः सव्यः' = वामो भविष्यति। अतो मत्परिचर्यार्थं वामपादं विसृज। भवत्या हि गौणरूपेणापि मह्यम् सेवावसरः प्रदातव्यः इति लक्ष्मणाभिप्रायः।।27।।

अनुवाद –

राम – मैथिलि, इन्हें ऐसा करने से रोको।

सीता – लक्ष्मण ऐसा आग्रह क्यों करते हो?

लक्ष्मण – क्या तुम अकेले आर्य के चरणों की सेवा करना चाहती हो। ऐसा कर मुझे इस सेवा से क्यों वञ्चित करना चाहती हो। अस्तु, दाहिने पैर की सेवा तुम करो और बायें पैर की सेवा मुझे प्रदान करो।।27।।

शब्दार्थ – त्वम् = तुम, एका = अकेली ही, मे गुरोः = मेरे बड़े भाई के, पादशुश्रूषाम् = चरणों की सेवा, कर्तुमिच्छसि = करना चाहती हो, दक्षिणः पादः = दाहिना पैर, सव्यः = बायाँ पैर।

टिप्पणी – पादशुश्रूषा = पादयोः शुश्रूषा (षष्ठी तत्पुरुष समास), गुरोर्मे = गुरुः+मे (विसर्ग सन्धि), तवैव = तव+एव (वृद्धि सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में पर्यायोक्ति अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ–

सीता – दीयतां खल्वार्यपुत्रः। संतप्यते सौमित्रिः। (दीअदु क्खु अय्यउत्तो। सन्तप्पदि सौमित्ती।)

रामः – सौमित्रे! श्रूयताम्। वल्कलानि नाम –

तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।
खलीनमिन्द्रियाश्वानाां गृह्यतां धर्मसारथिः ।।28।।

अन्वयः – वल्कलानि तपःसङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः इन्द्रियाश्वानां खलीनं धर्मसारथिः गृह्यताम्।।28।।

व्याख्या – तपःसङ्ग्रामकवचम् = तप एव संग्रामः युद्धं तत्र कवचं युद्ध शरीररक्षणार्थमाच्छादकरूपेण धारणीयकर्त्तव्यता। नियमद्विरदाङ्कुशः नियमः व्रतमेव द्विरदः हस्ती तस्य अङ्कुशः गजवशीकरणार्थमस्त्रविशेषः इन्द्रियाश्वानां खलीनम् इन्द्रियाणि एव अश्वा तेषां खलीनम् = मुखसंलग्ननियन्त्रणप्रग्रहः धर्मसारथिः धर्मरूपो यः रथस्तस्य सारथिः सञ्चालकः एवं भूतं वल्कलं गृह्यतामित्यारामः। अत्र वल्कलेषु कवचारोपे तपसि संग्रामारोपः कारणम् एवं वल्कलेषु अङ्कुशारोपे नियमे द्विरदारोपः कारणम्। किञ्च तत्रैव खलीनतारोपे इन्द्रियेषु अश्वारोहकारणम् तेन परम्परित रूपकमलङ्कारः। 'नियतारोपणोपायः स्यादारोपः परस्य यत् परम्परितमिति तल्लक्षणम्। किञ्च धर्मसारथिरित्यत्र वल्कलेषु सारथेरारोपः वाच्यः। धर्मे रथस्यारोपो व्यङ्ग्यः। एवमत्रापि परम्परितमेव। अनुष्टुप् छन्दः।।28।।

अनुवाद –

सीता – आर्यपुत्र! लक्ष्मण दुःखी हो रहे हैं। अतः इन पर भी कृपा कीजिये।

राम – तो लक्ष्मण सुनो ये तुम्हारे लिये वल्कल है जो तपरूपी संग्राम के कवच हैं, नियमरूपी हाथी को वश में करने के लिये अंकुश हैं, इन्द्रियरूपी घोड़ों के लिये लगाम, किंबहुना धर्मरूपी रथ के ये सारथी हैं। अतः इन्हें पहनो।।28।।

शब्दार्थ – तपःसङ्ग्रामकवचम् = वल्कल ही तपस्या रूपी संग्राम के कवच हैं, नियमद्विरदाङ्कुशः = वल्कल ही संयम रूपी हाथी को वश में करने के अंकुश हैं, इन्द्रियाश्वानाम् = वल्कल ही इन्द्रिय रूपी घोड़ों के लिए लगाम हैं, धर्मसारथिः = वल्कल ही धर्म रूपी रथ के लिए सारथि हैं।

टिप्पणी – तपःसङ्ग्रामकवचम् = तप एव सङ्ग्रामः तपसङ्ग्रामः तस्य कवचम् (तत्पुरुष समास), नियमद्विरदङ्कुशः = नियमः एवं द्विरदः नियमद्विरदः तस्य अङ्कुशः (षष्ठी तत्पुरुष समास), इन्द्रियाश्वानाम् = इन्द्रियाणि एव अश्वाः (कर्मधारय समास), इन्द्रियाश्वानाम् = इन्द्रिय+अश्वानाम् (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में रूपक अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

लक्ष्मणः – अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा परिधत्ते)

रामः – श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः। उत्सार्यतामुत्सार्यतां तावत्।

लक्ष्मणः – आर्य! अहमग्रतो यास्यामि। उत्सार्यतामुत्सार्यताम्।

रामः – मैथिलि! अपनीयतामवगुण्ठनम्।

सीता – यदार्यपुत्र आज्ञापयति। (अपनयति) (जं अय्यउत्तो आणवेति।)

रामः – भोः भोः पौराः। शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः –

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् वाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च।।29।।

अन्वयः – भवन्तः वाष्पाकुलाक्षैः वदनैः एतत् कलत्रं स्वैरं हि पश्यन्तु नार्यः यज्ञे विवाहे व्यसने वने च हि निर्दोषदृश्या भवन्ति।।29।।

व्याख्या – भवन्तः पुरवासिनो जनाः वाष्पाकुलाक्षैः = वाष्पैः अश्रुभिः आकुले पर्याकुले अक्षिणी नेत्रे येषां तैः वाष्पपरिप्लुतलोचनैः वदनैः मुखैरुपलक्षिताः भवन्तः इति एतत् पुरोदृश्यमां मम रामस्य कलत्रं भार्यां सीतां स्वैरं स्वच्छन्दं हि पश्यन्तु = विलोकयन्तु नार्यः = स्त्रियः यज्ञे = अश्वमेघादौ विवाहे = पाणिग्रहणावसरे व्यसने = विपत्काले श्मशानाद्युपगमनकाले वने च स्थिता निर्दोषदृश्याः –निर्दोषास्याश्च निर्दोषदृश्याः अथवा निर्दोषं यथा स्यात्तथा दृश्या भवन्ति। अत्रार्थान्तरन्यासः। सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। समर्थ्यते सोऽर्थान्तरन्यास इति तल्लक्षणात्। सीतादर्शनरूपं विशेषं यज्ञे विवाहे व्यसने वने च निर्दोषदृश्याः भवन्तीति सामान्येन समर्थनात्। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोस्साङ्कर्यादुपजातिश्छन्दः।।29।।

अनुवाद –

लक्ष्मण – आर्य मैं अनुगृहीत हुआ। (लक्ष्मण लेकर वल्कल पहनते हैं)

राम – मेरे वन जाने का समाचार सुनकर नगरवासियों को राजमार्ग अवरुद्ध हो गया है अतः इन्हे हटाओ; हटाओ।

लक्ष्मण – आर्य मैं आगे चलता हूँ। अरे भाई इन लोगों को हटाओ।

राम – मैथिलि! अपना घूँघट हटा लो।

सीता–जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा।(घूँघट हटा लेती है।)

राम – नगर के रहने वाले लोगों! सुनिये, सुनिये।

यह मेरी पत्नी सीता है इन्हें आप लोग अपने मुखों पर अश्रुधारा बहाने वालों नेत्रों से स्वच्छन्द रूप से देख लें क्योंकि यज्ञ, विवाह, आपत्ति एवं वन में स्त्रियों का दर्शन निर्दोष कहा जाता है ।।29।।

शब्दार्थ – वाष्पाकुलाक्षैः = आँसुओं से भरे नेत्रों से, वदनैः = मुखों से, एतत्कलत्रम् = इस स्त्री सीता को, स्वैरम् = यथेच्छ, नार्यः = स्त्रियाँ, यज्ञे = यज्ञ में, विवाहे = विवाह के अवसर पर, व्यसने = विपत्ति के समय में, वने = वन में, निर्दोषदृश्याः = दोष रहित देखना।

टिप्पणी – वाष्पाकुलाक्षैः = वाष्पैः आकुले अक्षिणी येषां तैः (बहुव्रीहि समास), वाष्पाकुलाक्षैः = वाष्प+आकुलाक्षैः (दीर्घ सन्धि), पश्यन्तु = दृश्, लोट्, प्रथम पुरुष बहुवचन, भवन्ति = भू, लट्, प्रथम पुरुष बहुवचन।

प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहाँ उपजाति छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।''** जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से उपलब्ध हों, वहाँ उपजाति छन्द होता है।

मूलपाठ – (प्रविश्य)

काञ्चुकीयः – कुमार! न खलु न खलु गन्तव्यम्। एष हि महाराजः,

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम्।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः।।30।।

अन्वयः – वधूसहायं सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ते वनगमनं श्रुत्वा जीर्णः (एष महाराजः) उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः सन् कान्तारद्विरद इव उपयाति।।30।।

व्याख्या – वधूसहायमिति–वधूसहायम् वधू भार्या सीता सहाया सङ्गिनी यस्मिन् कर्मणि तत्तथा। सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् सौभ्रात्रेण भ्रातृस्नेह महिम्ना अध्यवसिता संचेष्टिता यात्रा यस्मिन् कर्मणि तत्तथा ते तव वनगमनं वनाय प्रस्थानं श्रुत्वा आकर्ण्य एष शिथिलः महाराजः उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः सन् क्षितितलरेणुभिः धरास्थधूलिभिः रूषिताङ्गः धूसरिताङ्गः जीर्णः जरया ग्रस्तः कान्तारद्विरदः गहनवनसंस्थितः करी इव यथा उपयाति भवन्तमनुगच्छति। अतस्तस्मिन् दयस्व। क्षणं प्रतीक्षस्व येन स वनगमनावसरे युष्मान् पश्येदित्यर्थः। तमुपेक्ष्यत्वद्वनगमनं नोचितम्। अस्मिन् अद्ये वधूसहायमित्यनेन रामवनगमनस्य दुःसहता सौभ्रात्यनेन लक्ष्मणस्यात्मीयता उत्थायेत्यनेन राज्ञो भृशमस्थिरता रेणुरूषिताङ्गः इत्यनेन राज्ञो दीनावस्था कान्तारद्विरदः इवेत्यनयोपमया तस्य नितान्त कष्टमयजीवनं च वर्णितम्। उपमालङ्कारः। विशेषणानां साभिप्रायत्वात्परिकरोऽपि। प्रहर्षिणीवृत्तम्।

अनुवाद – (प्रवेश कर)

कञ्चुकी – राजकुमार! मत जाइये, मत जाइये। इधर देखिये।

ये महाराज यह सुनकर कि आप वन को जा रहे हैं एवं आपके साथ केवल सुकुमारी सीता जा रही है और भ्रातृप्रेम से आकृष्ट हुए केवल लक्ष्मण ही आपका अनुगमन कर रहे हैं शोकविह्वल हो पृथ्वी पर से उठकर धूलि से लिपटे हुए वनैले वृद्ध हाथी के समान इधर ही आप लोगों को देखने के लिये आ रहे है।।30।।

शब्दार्थ – वधूसहायम् = वधू सीता के सहित, सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् = भाई के प्रेम से युक्त लक्ष्मण के अनुगमन को, क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः = पृथ्वी की धूल से धूसरित अंग वाला।

टिप्पणी – वधूसहायम् = वधूः सहायः यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि समास), सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् = सौभ्रात्रेन व्यवसिता लक्ष्मण अनुयात्रा यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि समास), क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः = क्षितितलस्य रेणुभिः रूषितानि अङ्गानि यस्य सः (बहुव्रीहि समास), कान्तारद्विरद = कान्तारश्च द्विरदः (तत्पुरुष समास), इवोपयाति = इव+उपयाति (गुण सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा और परिकर अलंकार है। यहाँ प्रहर्षिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''म्नौ भ्नौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्''** अर्थात् जहाँ क्रमशः मगण, नगण, रगण और अन्त में एक गुरु वर्ण हो तथा तीसरे और दसवें वर्णों पर यति हो वहाँ प्रहर्षिणी छन्द होता है।

मूलपाठ –

लक्ष्मणः – आर्य!

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्?

रामः –

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु।।31।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

अन्वयः – चीरमात्रोत्तरीयाणां वनवासिनां किं दृश्यम्। एतच्छ्रुत्वा रामो वदति। अस्मासु गतेषु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु।।31।।

व्याख्या – चीरमात्रोत्तरीयाणाम्–चीरमात्रम् = वल्कलमात्रम् न तु पीताम्बरादि उत्तरीयं येषां ते तथाभूतानामस्माकम् वनवासाय प्रस्थानोन्मुखानाम् किं दृश्यं न किमपीत्यर्थः। एतेनानुगच्छतः राज्ञः प्रतीक्षार्थं स्वकीयावस्थानमनावश्य किमिति सूचितम् रामोऽपि तदेव समर्थयन्नाह–गतेष्विति। अस्मासु गतेषु राजानं प्रतीक्ष्यैव गतेषु वनं प्रस्थितेषु राजा नः शिरःस्थानानि प्रधानावासगृहादीनि पश्यतु = अवलोकयतु। अस्मदीयप्रधानावासदर्शनेनात्मानं सान्त्वयत्वित्यर्थः।

अनुवाद –

लक्ष्मण – आर्य, मात्र वल्कलधारी एवं वन के लिये प्रस्थान करने वाले हम लोगों के पास क्या रखा है जिसे वे देखना चाहते हैं।

राम – हम लोगों के चले जाने पर अब राजा हमारे निवासभूत स्थानों को देखा करेंगे।।31।।

शब्दार्थ – चीरमात्रोत्तरीयाणाम् = केवल वल्कल धारण करने वाले, वनवासिनाम् = वनवासी लोगों का, किम् = क्या, दृश्यम् = देखने योग्य है, अस्मासु गतेषु = हमारे चले जाने पर, राजा = महाराज दशरथ, नः = हमारे, शिरःस्थानानि = आत्मीय जनों को, पश्यतु = देखें।

टिप्पणी – चीरमात्रोत्तरीयाणाम् = चीरमात्रम् उत्तरीयं येषाम् (बहुव्रीहि समास), गतेष्वस्मासु = गतेषु+अस्मासु (यण् सन्धि), शिरःस्थानानि = शिरसः स्थनानि (तत्पुरुष समास), पश्यतु = दृश्, लोट्, प्रथम पुरुष एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

बोध प्रश्न

1) 'भतृनाथा हि नार्यः' कथन किसका है?

.....

.....

.....

2) 'इवाग्रतः' पद का सन्धि विच्छेद कीजिए।

.....

.....

.....

3) 'पङ्कलग्लम्' पद में कौन सा समास है?

.....

.....

.....

4) 'बाष्पाकुलाक्षैः' पद का समास विग्रह कीजिए।

.....

.....

.....

.....

5) त्रिविध पाप कौन-कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1) 'अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

9.3 सारांश

महाकवि भास का प्रतिमानाटक यद्यपि रामायण को आधार बनाकर लिखा गया है तथापि यह उनकी मौलिकता तथा अद्भुत कल्पना कौशल का भी प्रतीक है। आपने देखा कि राम क्रुद्ध लक्ष्मण को समझाते हुए दशरथ और कैकेयी को निर्दोष बताते हैं। लक्ष्मण के क्रोध पर राम यह कहते हैं कि राज्य वस्तुतः कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसके लिए पिता महाराज दशरथ तथा माता महारानी कैकेयी पर दोष आरोपित किया जाए। राम की क्षमाशीलता यद्यपि लक्ष्मण को उद्विग्न करती है तथापि राम उन्हें शान्ति धारण करने के लिए कहते हैं। आपने यह भी देखा कि सीता भी लक्ष्मण को क्रुद्ध देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित होती हैं और राम से कहती हैं कि आज से पहले मैंने लक्ष्मण को इतना क्रोध करते हुए नहीं देखा। 14 वर्ष के लम्बे वनवास पर ही उनका इतना बड़ा क्रोध है। पूछे जाने पर लक्ष्मण स्वयं भी अपने कोप का कारण स्पष्ट करते हैं कि राज्याभिषेक न होने का मुझे इतना कष्ट नहीं है जितना कि आपके लिए दिए गए 14 वर्ष के वनवास से है। सीता राम को अकेले वनगमन के लिए उद्यत देखकर कहती हैं कि मैं आपकी सहधर्मचारिणी हूँ इसलिए मुझे आपके साथ ही चलना होगा। राम वन का भय दिखाकर सीता को वनगमन से रोकना चाहते हैं किन्तु वह कहती है कि जहाँ आप रहेंगे वहीं मेरे लिए महल होगा लक्ष्मण स्वयं भी सीता के वनगमन का समर्थन करते हैं और अपने तर्क से राम को निरुत्तर कर देते हैं। लक्ष्मण तर्क देते हैं कि राहु के द्वारा ग्रसित होने पर रोहिणी चन्द्रमा को नहीं छोड़ देती। महान् वृक्ष के गिर जाने पर उस पर आश्रित लता उस वृक्ष को नहीं छोड़ती, कीचड़ से सने हुए गजेन्द्र को छोड़कर हथिनी कब अलग होती है? इससे यह सिद्ध होता है कि नारी किसी भी परिस्थिति में अपने प्रियतम का अनुगमन करती है। इस प्रकार लक्ष्मण की बातें सुनकर राम सीता को अपने साथ वन जाने की अनुमति प्रदान करते हैं तथा सीता के कहने पर राम लक्ष्मण को भी अपने साथ वन आने की अनुमति प्रदान करते हैं। परस्पर वार्तालाप के अनन्तर वल्कल वस्त्र धारण कर वन जाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने भ्रातृ प्रेम तथा कर्तव्यनिष्ठा की अनूठी संकल्पना का अध्ययन किया है।

9.4 शब्दावली

विसर्जितः – जाने की आज्ञा दिया

शताकीर्ण – सैकड़ों वीरों को

न रुचितम् – यदि रुचिकर नहीं लगा

निर्मनस्विता – स्वाभिमान से शून्य होना

समम् – समान होना

भ्रकुटिः – भौंहें

रोषणाय – क्रोध के लिए

वने – जंगल में

मङ्गलार्थः	–	मंगल के लिए
गजेन्द्रम्	–	गजराज को
मत्सरी	–	लालची
दक्षिणः पादः	–	दाहिना पैर
नार्यः	–	स्त्रियाँ
पश्यतु	–	देखें

9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

i) प्रतिमानाटकम् (अनु.) डॉ. श्री कृष्ण ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर ।

ii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) डॉ. सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006

iii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

iv) प्रतिमानाटकम् (सम्पा.) श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2016

v) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (ले.) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018

9.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) 'भतृनाथा हि नार्यः' कथन लक्ष्मण का है।

2) 'इवाग्रतः' पद का सन्धि विच्छेद है – इव+अग्रतः।

3) 'पङ्कलग्लम्' पद में षष्ठी तत्पुरुष समास है।

4) 'बाष्पाकुलाक्षैः' पद का समास विग्रह – बाष्पैः आकुले अक्षिणी येषां तैः।

5) त्रिविध पाप है – माता वध, पिता वध, अनुज वध।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 10 प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क) – भाग 3

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क) – श्लोक 1-11

10.3 सारांश

10.4 शब्दावली

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- महाकवि भास की नाट्य निपुणता से परिचित हो सकेंगे।
- प्रतिमाओं के दृश्य विधान में भास के अवदान को जान सकेंगे।
- भास के प्रकृति निरूपण के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
- दुःखी मन में आशंकायें किस प्रकार उत्पन्न होती हैं? यह मनोवैज्ञानिक तथ्य भी जान सकेंगे।
- भरत का अपने पिता एवं भाइयों के प्रति अनुराग को जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने यह अध्ययन किया कि राम, लक्ष्मण और सीता चौदह वर्ष के लिए वन को चले गये हैं। राजा दशरथ उनके वनगमन के दुःख से अत्यन्त पीड़ित हैं। राम के कथन से यह ज्ञात होता है कि दशरथ उस समय बोलने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने मात्र संकेत से ही राम, लक्ष्मण और सीता को वन जाने का निर्देश दिया। आपके पाठ्यक्रम में प्रथम और द्वितीय इकाइयों के रूप में महाकवि भास विरचित प्रतिमानाटकम् का प्रथम अंक निर्धारित किया गया है। तृतीय और चतुर्थ इकाई के रूप में आप इसी नाटक के तृतीय अंक का अध्ययन करेंगे। तृतीय अंक का आरम्भ भरत के ननिहाल से लौटने के प्रसंग से होता है। भरत को ननिहाल में यह सूचना दी जाती है कि महाराज दशरथ बहुत ही रुग्ण हैं। मार्ग में सारथि के साथ आते हुए भरत उससे पूछते हैं कि मेरे पिता को कौन सा रोग हुआ है? सारथि उत्तर देता है कि मुझे इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। वैद्य उनकी चिकित्सा कर रहे हैं। भरत का रथ अत्यन्त वेग से अयोध्या की ओर बढ़ रहा है तथा भरत घर पहुँचकर अपने पिता के दर्शन की लालसा से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। उनके मन में कहीं न कहीं अनिष्ट की आशंका भी है। वह सारथि से कहते हैं कि मैं पिता जी को प्रणाम कर रहा हूँ तथा वह मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। भरत की बात सुनकर सारथि अत्यन्त दुःखी होता है। वह मन में सोचता है कि हम अयोध्या पहुँचने ही वाले हैं और महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार इन्हें कैसे दिया जाएगा? भारतीय संस्कृति में दुःखद

समाचार देना अमंगलसूचक माना गया है। अतः भास ने प्रतिमाओं का एक दृश्य कल्पित किया है जो उनकी अपनी कल्पनाशीलता तथा नाट्यकला का परिचायक है। भरत एक देव मन्दिर में विश्राम के लिए रुकते हैं और वहाँ विराजमान मूर्तियों को प्रणाम करने के लिए अन्दर जाते हैं। पुजारी देवकुलिक उन्हें मूर्तियों का दर्शन कराता है। भरत दिलीप आदि इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की मूर्तियों को प्रणाम करते हैं। दशरथ की मूर्ति को देखकर वह घबरा जाते हैं और उनसे पूछते हैं कि यह किसकी प्रतिमा है? देवकुलिक उन्हें दशरथ की मृत्यु का समाचार देता है और भरत पश्चाताप करते हैं।

10.2 प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क) – श्लोक 1-11

मूलपाठ – **(ततः प्रविशति सुधाकारः)**

सुधाकारः – (सम्मार्जनादीनि कृत्वा) भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसम्भवकस्याज्ञप्तम्। यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि। (स्वपिति) (भोदु, दाणि किदं एत्थ कय्यं अय्य सम्भवअस्स आणत्तं। जाव मुहूत्तं सुविस्सं।)

(प्रविश्य)

भटः – (चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अङ्घो दास्याः पुत्र! किमिदानीं कर्म न करोषि? (ताडयति) (अङ्घो दासीएपुत्त! किं दाणि कम्म ण करेसि?)

सुधाकारः – (बुद्ध्वा) ताडय मां, ताडय माम्। (तालेहि मं तालेहि मं।)

भटः – ताडिते त्वं किं करिष्यसि? (ताडिदे तुवं किं करिस्ससि?)

सुधाकारः – अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्त्रं नास्ति। (अनण्णस्य मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि।)

भटः – बाहुसहस्त्रेण किं कार्यम्? (बाहुसहस्सेण किं कय्यं?)

सुधाकारः – त्वां हनिष्यामि। (तुवं हणिस्सं।)

अनुवाद – (सुधाकार (चूना पोतने वाला कारीगर) का प्रवेश)

सुधाकार – (झाड़ू-बहारू लगाकर एवं अन्य समस्त कार्य पूर्ण करने के उपरान्त) अच्छा मैंने आर्य सम्भवक के द्वारा कहे गये सारे काम पूरे कर लिये। अब थोड़ी देर आराम से सो लूँ। (सो जाता है)।

(भट (सिपाही) का प्रवेश)

भट – (भृत्य के पास जाकर तथा उसे पीटते हुए) अरे दासीपुत्र! तू काम क्यों नहीं करता (ऐसा कहकर पीटने लगता है)

सुधाकार – (जागकर) मार लो मुझे, मार लो।

भट – मैं तुम्हें मारता हूँ, देखता हूँ कि तुम मेरा क्या कर लेते हो।

सुधाकार – क्या कहूँ, मुझ अभागे को भगवान् ने राजा कार्तवीर्य अर्जुन के समान हजार हाथ नहीं दिये।

भट – कार्तवीर्य के समान हजार हाथ होते तो तुम मेरा क्या कर लेते।

सुधाकार – मैं तुम्हें मार डालता।

मूलपाठ –

भटः – एहि दास्याः पुत्र! मृते मोक्ष्यामि। (पुनरपि ताडयति।) (एहि दासिएपुत्त! मुदे मुञ्चिस्सं।)

सुधाकारः – (रुदित्वा) शक्यमिदानीं भर्तः! मेऽपराधं ज्ञातुम्। (शक्कं दाणिं भट्टा! मे अवराहं जाणिदुम्।)

भटः – नास्ति किलापराधो नास्ति। ननु मया सन्दिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौशल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्तव्यमिति। अत्रेदानीं त्वया किं कृतम्? (णत्थि किल अवराहो णत्थि। ण मए सन्दिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जबिब्भट्ठकिंदसन्दावेण सग्गं गदस्स भट्टिजो दसरहस्स पडिमागेहं देट्ठुं अज्ज कौसल्लापुरोएहि सब्बेहि अन्तेउरेहि इह आअन्तव्वं त्ति। एत्थ दाणि तुए किं किदं?)

अनुवाद –

भट – अरे दासीपुत्र! अब तो मैं तुम्हें मार कर तभी छोड़ूंगा। (फिर पीटने लगता है)

सुधाकार – (रोते हुए) स्वामिन् क्या मैं अपना अपराध जान सकता हूँ।

भट – क्या तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है? भला मैंने तुम्हें आज्ञा दी थी कि राजकुमार श्रीराम के राज्यविच्युत होकर वन चले जाने से उनके शोक से सन्तप्त हुए महाराज दशरथ ने अपना प्राण दे दिया। इस समय उन मृत महाराज की प्रतिमा जहाँ स्थापित है उस गृह को देखने के लिये कौशल्यादि समस्त रानियाँ आने वाली हैं तो बताओ तुमने यहाँ आकर क्या काम किया?

मूलपाठ –

सुधाकारः – पश्यतु भर्ता अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम्। सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा बालुकाः। अत्रेदानीं मया किं न कृतम्? (पेक्खदु भट्टा अवणीदकवोदसन्दाणअं दाव गब्भगेहं। सोहवण्णअदत्तचन्दणपञ्चाङ्गुला भित्तीओ। ओसत्तमल्लदामसोहीणि दुवाराणि। पइण्णा बालुआ। एत्थ दाणि मए किण किदं?)

भटः – यद्येवं विश्वस्तो गच्छ। यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि। (जइ एवं विस्सत्थो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि।)

अनुवाद –

सुधाकार – स्वामिन् आप ही देख लीजिये! जिस गर्भगृह में झाड़ू बहारू के न लगने से कबूतरों ने अपने घोंसले बना रखे थे उन घोसलों को नष्ट कर मैंने गर्भगृह को सर्वथा स्वच्छ बना दिया है। दीवारों पर चूना पोतकर उन्हें स्वच्छ कर दिया है इतना ही नहीं, उन पर पाँचों अङ्गुलियों से चन्दन के छाप लगा दिये हैं। दरवाजों को पुष्पमालाओं से सुसज्जित कर दिया है। मार्ग में आने वालों की सुविधा के लिये कोमल तथा महीन बालू बिछा दी है। अब आप ही कहिये मैंने क्या नहीं किया?

भट – अच्छा, यदि ऐसी बात है तो तुम निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार या जहाँ जी चाहे जाओ। मैं भी मन्त्री जी के पास जाकर सूचित करूँ कि सब ठीक-ठाक है।

मूलपाठ – **(निष्क्रान्तौ)**

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः – (सावेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयादविज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि। श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति। तदुच्यताम् –

पितुर्मे को व्याधिः

सूतः– हृदयपरितापः खलु महान्

भरतः – किमाहुस्तं: वैद्याः।

सूतः – न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।

भरतः – किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

सूतः – भूमौ निरशनः

भरतः – किमाशा स्याद्

सूतः – दैवं

भरतः – स्फुरति हृदयं वाहय रथम्।।1।।

अनुवाद – (दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(रथ में बैठे भरत एवं सारथि का प्रवेश)

भरत – (कुछ उद्विग्न से होकर) सारथे ! चिरकाल पर्यन्त मामा जी के यहाँ रहने से मुझे घर का समाचार नहीं मिला। सुना है कि महाराज शरीर से अत्यन्त अस्वस्थ हैं तो बताओ मेरे पिता को कौन-सी व्याधि है?

सूत – महाराज! उन्हें कोई शारीरिक रोग नहीं है। किन्तु दारुण मानसिक सन्ताप है।

भरत – तो वैद्यों ने इस विषय में क्या कहा?

सूत – वैद्य लोग उस रोग के निदान में सर्वथा असमर्थ हैं।

भरत – अच्छा, महाराज क्या खाते हैं और किस प्रकार सोते हैं?

सूत – महाराज वे पृथ्वी पर निराहार शयन कर पड़े हुए हैं।

भरत – उनके जीने के विषय में कैसी आशा है?

सूत – देव जाने। इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

भरत – सूत, तब तो मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ को शीघ्र हाँको।।1।।

शब्दार्थ – मे पितुः = मेरे पिता जी को, को व्याधिः = कौन सा रोग है, वैद्याः = चिकित्सक, तम् = उनके विषय में, किम् = क्या, आहुः = कहते हैं, तत्र खलु = उस विषय में, भिषजः = चिकित्सक, न निपुणाः = कुछ नहीं समझ पा रहे, किमाहारं भुङ्क्ते = क्या वे भोजन ठीक से करते हैं?, शयनमपि = उन्हें नींद आती है, निरशनः

= बिना कुछ खाए, भूमौ = भूमि पर, किमाशा स्याद् = उनके विषय में क्या आशा की जाए, दैवम् = यह भगवान् के अधीन है, हृदयम् = हृदय, स्फुरति = व्याकुल हो रहा है, वाहय = आगे बढाओ।

टिप्पणी – हृदयपरितापः = हृदयस्य परितापः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पितुर्मे = पितुः+मे (विसर्ग सन्धि), आहुस्तम् = आहुः+तम् (विसर्ग सन्धि), भिषजस्तत्र = भिषजः+तत्र (विसर्ग सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी''** अर्थात् जिस छन्द में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण हो तथा छठें और ग्यारहवें वर्णों पर यति हो तो वहाँ शिखरिणी छन्द होता है।

मूलपाठ –

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं वाहयति)

भरतः – (रथवेगं निरूप्य) अहो नु खलु रथवेगः। एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं–
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ।।2।।

अन्वयः – द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव। मही उद्वृत्ताम्बुः नदी इव नेमिविवरे निपतति। अरव्यक्तिः नष्टा चक्रवलयम् जवाद्, स्थितमिव (भाति) अश्वोद्धूतं रजः च पुरतः पतति न अनुपतति।। 2।।

व्याख्या – रथवेगं निरूपयति–द्रुतरथगतिक्षीणविषया–द्रुतया–शीघ्रया रथगत्या = रथसंचालनेन क्षीणविषयाः = क्षीणः स्वल्पः विषयो दृग्गोचराः वयवः येषां ते तादृशाः द्रुमाः = वृक्षाः धावन्ति इव प्रतीयन्ते। रथवेगमहिम्ना त्वरया दृश्यमाना अपि वृक्षाः स्वल्पावयवत्वेनेव दृग्गोचरतां यान्ति अतोल्पधावन्त इव दृश्यन्ते। मही = भूमिः उद्वृत्ताम्बुः = उद्भ्रान्तजला नदी इव नेमिविवरे = प्रधिरन्ध्र निपतति इव ज्ञायते। अरव्यक्तिः–अराणाम् = नेमिनाभिमध्यवर्त्तिदण्डा करभागानाम् व्यक्तिः स्फुटावभासमाना या पूर्वं पृथक् प्रतीयमानाऽसीत् सा नष्टा = तिरोहिता। जवात् = वेगातिशयात् चक्रवलयम् = रथचक्रमण्डलम् स्थितमिव = निश्चलमिव प्रतीयते। वेगाधिक्येन रथचक्रभ्रमणं भूमौ न संलक्ष्यते इत्यर्थः। अश्वोद्धूतम् = अश्वैः उद्धूतम् = खुराघातसमुद्भवं रजः = धूलिश्च पुरतः = अग्रे पतति न अनुपतति अनु = रथस्य पृष्ठभागे न पतति रथस्य दूरं निर्गमनादिति भावः। अत्र रथवेगस्य स्वाभाविकरूपेण वर्णनात् स्वभावोक्तिरलङ्कारः। धावन्तीवेत्यादौ उत्प्रेक्षापि। शिखरिणीवृत्तम्।।2।।

अनुवाद –

सूत – जैसी आज्ञा (कहकर रथ चलाता है)

भरत – (रथ का वेग भली-भाँति देखकर) अहो कितना अच्छा रथ का वेग है -

द्रुततर रथ के वेग के कारण वृक्षों के कुछ ही भाग दृष्टि से दिखाई पड़ रहे हैं और वे दौड़ते से प्रतीत हो रहे हैं। यह सारी पृथ्वी भंवर से युक्त जल वाली नदी के समान

धुरी के छिद्रों में सिमटती हुई जैसी प्रतीत हो रही है। बड़ी तेजी से घूमने के कारण रथ के धुरे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। रथ के पहिये ऐसे मालूम पड़ रहे हैं मानो वे निश्चल हो गये हैं। बहुत क्या, घोड़ों के टापों से उड़ी हुई धूलि रथ के आगे के भाग पर गिर रही है। उसके पीछे के भाग पर नहीं पड़ती क्योंकि इतनी देर में रथ बहुत आगे बढकर चला जाता है।।2।।

शब्दार्थ – द्रुतरथगतिक्षीणविषया = रथ की तेज गति के कारण क्षण भर में दृष्टि से दूर होने वाले, द्रुमाः = वृक्ष, धावन्तीव = मानो दौड़ रहे हैं, मही = पृथ्वी, उद्वृत्ताम्बुः = ऊपर की ओर उछल रहे जल वाली, नेमिविवरे = रथचक्र की धूरि के छिद्र में, अरव्यक्तिर्नष्टा = रथ के पहिए में लगी तीलियाँ नष्ट सी हो गई है, चक्रवलयम् = रथ के पहियों का घेरा, स्थितमिव = रुका हुआ सा लग रहा है, अश्वोद्धूतम् = घोड़ों के द्वारा उड़ायी गई धूल, पुरतः = आगे, रजः = धूल, पतति = गिर रही है, नानुपतति = पीछे नहीं गिर रही है।

टिप्पणी – चक्रवलयम् = चक्रस्य वलयम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अश्वोद्धूतम् = अश्वैः उद्धूतम् (तृतीया तत्पुरुष समास), उद्वृत्ताम्बुः = उद्वृत्तम् अम्बुः यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), अरव्याक्तिः = अराणाम् व्यक्तिः (तत्पुरुष समास), धावन्तीव = धावन्ति+इव (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं शिखरिणी छन्द है।

मूलपाठ –

सूतः – आयुष्मन्! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम्।

भरतः – अहो न खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः। सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापित–
स्त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः।
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ।।3।।

अन्वयः – पितुः पादयोः (मम) शिरः पतितमिव, स्निह्यता राज्ञा समुपस्थापित इव अस्मि। भ्रातरः त्वरितम् उपगता इव, मातरः माम् अश्रुभिः क्लेदयन्ति इव, सदृश इति महान् इति व्यायतश्च इति भृत्यैः सेवया स्तुत इव अहं तत्र आत्मनः वेष भाषां च सौमित्रिणा परिहसितम् इव पश्यामि।।3।।

व्याख्या – इदानीं = अयोध्यागमनान्तरं स्वाभीष्टकल्पनम् मनसा अनुभवः नाह–पितुः = दशरथस्य पादयोः = चरणयोः, शिरः = मम मस्तकं पतितमिव। स्निह्यता = सुतवात्सल्यादतिशयस्नेहं दर्शयता राज्ञा समुपस्थापितः = पादतलादुत्थाप्य स्वाङ्कमारोपित इव, अस्मि। भ्रातरः = रामादयः, त्वरितम् = शीघ्रम्, उपगता = सन्निकट प्राप्ता इव मामिति शेषः मातुलकुलादागतं मां संश्रुत्य सत्वरं परिवार्य स्थिता इत्यर्थः। मातरः = जनन्यः माम् अश्रुभिः = प्रहर्षजन्यनेत्रजलबिन्दुभिः क्लेदयन्ति = आर्द्रयन्ति इव। सदृशः = यथा इतो मातुलकुलं गतस्तदवस्थः एव परावृतः इति महान् इति, यावदाकारो गतस्ततो अपचितावयवः सन् परावृत्त इति। व्यायतः = विशाल इति कथयद्भिः भृत्यैः = परिचारकैः सेवया अहं स्तुतः = गुणवर्णने प्रसक्तः इव तत्र स्वगृहे आत्मनः वेषम् = कैकयदेशोचितपरिधानीयम् भाषाम् = तद्देशीयभाषाप्रभावितम् भाषाम्

सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन परिहसितम् इव = परिहास्यमानमिव पश्यामि = अनुभवामि। लक्ष्मणो हि कैकयदेशजन्यां मदीयां भाषां वेषं च श्रुत्वा दृष्ट्वा च परिहसिष्यतीति भावः। अत्र भाविवृत्तस्य भरतेन प्रत्यक्षीकरणात् भाविकनामालङ्कारः। 'प्रत्यक्षा इव य दावाः क्रियन्ते भूतभाविनः' इति तल्लक्षणात्। उपजातिश्छन्दः।।3।।

अनुवाद –

सारथी – श्रीमन्! वृक्षों की सघनता तथा शीतलता से जान पड़ता है कि अब अयोध्या यहीं कहीं समीप में ही है।

भरत – अहो! यह हमारा मन आत्मीय जनों के दर्शनार्थ कितना उतावला हो रहा है क्योंकि इस समय –

मुझे मालूम पड़ रहा है कि मैंने पिताजी के चरणों में अपना सिर नवा दिया है, राजा ने भी वत्सलता से मुझे चरणों पर से उठाकर अपनी गोद में ले लिया है। मेरे आने का समाचार पाते ही मेरे सभी भाइयों ने शीघ्रता से पास आकर मुझे घेर सा लिया है, माताओं के आनन्दाश्रुओं से मेरा शरीर आर्द्र हो रहा है। कोई सेवक कहता है राजकुमार जैसे जाने के समय थे अब भी वैसे ही हैं। कोई कहता है नहीं नहीं, अब वे बढ़ गये हैं और पहले की अपेक्षा इनका शरीर भी सुपुष्ट दिखाई पड़ता है, इस प्रकार भृत्यगण मेरे विषय में स्तुतिपरक वचन कह रहे हैं। लक्ष्मण मेरी भिन्न प्रकार की वेशभूषा को देखकर तथा भिन्न प्रकार की भाषा सुनकर मेरा परिहास करते जैसे प्रतीत हो रहे हैं।।3।।

शब्दार्थ – पितुः = पिता जी के, पादयोः = चरणों में, शिरः = मस्तक, पतितमिव = झुका हुआ सा, स्निह्यता = स्नेहपूर्वक, राजा = राजा दशरथ ने, समुत्थापित इव = उठा सा लेना, भ्रातरः = राम आदि भाई, उपगताः = पास आए हुए थे, मातरः = मातायें, अश्रुभिः = आँसुओं से, क्लेदयन्तीव = भिगो सी रही हैं, भृत्यैः = सेवकों के द्वारा, सेवया = सेवा करके, सौमित्रणा = लक्ष्मण के द्वारा, परिहसितमिव = मजाक सा उड़ाया जाना।

टिप्पणी – व्यायतश्चेति = व्यायतः+चेति (विसर्ग सन्धि), इवाहम् = इव+अहम् (दीर्घ सन्धि), सौमित्रिणा = तृतीया विभक्ति एकवचन, अश्रुभिः = तृतीया विभक्ति बहुवचन।

प्रस्तुत श्लोक में भाविक अलंकार और उपजाति छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।''** जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से उपलब्ध हों, वहाँ उपजाति छन्द होता है।

मूलपाठ –

सूतः – (आत्मगतम्) भोः कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलामाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः। जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते। कुतः,

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम्।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ?।।4।।

अन्वयः – पितुः प्राणपरित्यागं मातुः ऐश्वर्यलुब्धताम् ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च इति त्रीन् दोषान् कः अभिधास्यति ।।4।।

व्याख्या – पितुः प्राणपरित्यागम् = दशरथमरणम्, मातुः = कैकेय्याः भरत जनन्या ऐश्वर्यलुब्धताम्–ऐश्वर्ये = राज्यैश्वर्ये लुब्धताम्–लुब्धाया भावः ताम् = लोभयुक्तताम् ज्येष्ठभ्रातुः = श्रीरामस्य प्रवासम् = वनगमनं चेति त्रीन् दोषान् = हृदयखेदजनकान् दुःसंवादान् कः अभिधास्यति न कोऽपीत्यर्थः। एकोऽपि दुःसंवादः मर्मव्यथाकरत्वाद् खेदजनकः। किं पुनः त्रयः अतः अहं नैवेतान् कथयिष्यामीति सूताभिप्रायः।।4।।

अनुवाद –

सारथी – (स्वगत) ओह! कितने दुःख की बात है कि कुमार महाराज की मृत्यु से अवगत न होने के कारण झूठी आशा लिये अयोध्या में प्रवेश करने जा रहे हैं। हम जानते हुए भी इन्हें कुछ बता नहीं पा रहे हैं। बताऊँ भी कैसे? क्योंकि –

पिता का स्वर्गवास, माता का राज्यैश्वर्य के प्रति लोभ और बड़े भाई का वनवास ये एक से एक बढ़कर ऐसे उद्वेगजनक संवाद हैं कि एक का भी कहना कठिन है, फिर इन तीनों को एक साथ ही किस प्रकार कहा जा सकता है?।।4।।

शब्दार्थ – पितुः = पिता जी का, प्राणपरित्यागम् = प्राण छोड़ना, मातुः = माता कैकेयी का, ऐश्वर्यलुब्धताम् = राज्य का लोभ, ज्येष्ठभ्रातुः = बड़े भाई श्रीराम का, प्रवासम् = वनगमन, त्रीन् दोषान् = इन तीन विपत्तियों को, कः = कौन, अभिधास्यति = बतायेगा।

टिप्पणी – प्राणपरित्यागम् = प्राणानां परित्यागम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), ऐश्वर्यलुब्धता = ऐश्वर्यस्य लुब्धता (षष्ठी तत्पुरुष समास), कोऽभिधास्यति = कः+अभिधास्यति (पूर्वरूप सन्धि), पितुः = षष्ठी विभक्ति एकवचन, त्रीन् = द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है।

मूलपाठ – **(प्रविश्य)**

भटः – जयतु कुमारः।

भरतः – भद्र, किं शत्रुघ्नो मामभिगतः?

भटः – अभिगतः खलु वर्तते कुमारः। उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः।

भरतः – किमिति किमिति?

भटः – एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः।

भरतः – बाढमेवम्। न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। गच्छ त्वम्।

भटः – यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः)

भरतः – अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये। भवतु, दृष्टम्। एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये। तदुभयं भविष्यति–दैवतपूजा विश्रमश्च। अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः तस्मात् स्थाप्यतां रथः।

अनुवाद –

(प्रवेश कर)

भट – राजकुमार की जय हो।

भरत – भद्र, क्या शत्रुघ्न मेरे स्वागत के लिये आ गये।

भट – शत्रुघ्न तो आ ही रहे हैं, उपाध्यायों ने आपके लिये कहा है।

भरत – उन लोगों ने मेरे लिये क्या कहा है?

भट – उन लोगों ने कहा है कि अभी कृत्तिका का भोगकाल एक दण्ड बाकी है उसके बीत जाने पर रोहिणी में कुमार अयोध्या में प्रवेश करें।

भरत –बहुत अच्छ। मैंने आज तक गुरुजनों की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं किया है। अतः तुम जाओ।

भट – कुमार की जैसी आज्ञा (जाता है)।

भरत – तो अब किस जगह विश्राम करूँ। अच्छा दिखाई पड़ा। पेड़ों के बीच में दिखाई पड़ने वाले इस देवमन्दिर में कुछ क्षण तक विश्राम करूँगा। इससे दोनों बातें होंगी। प्रथम देवगणों की पूजा तदनन्तर विश्राम और ऐसा करने से एक विशिष्ट शिष्टाचार का पालन भी हो जायेगा कि नगर में प्रवेश करते समय पहले कुछ देर तक उस नगर के निकट में किसी स्थान पर विश्राम कर लेना चाहिये तो सूत, रथ को इसी जगह ठहरा लो।

मूलपाठ –

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं स्थापयति)

भरतः – (रथादवतीर्य) सूत! एकान्ते विश्रामयाश्वान्।

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (निष्क्रान्तः)

भरतः – (किञ्चिद् गत्वावलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृताः बलयः, दत्तचन्दनपञ्चाङ्गुलाः भित्तयः अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि, प्रकीर्णा बालुकाः। किन्नु खलु पार्वणोऽयं विशेषः? अथवा आह्निकमास्तिक्यम्? कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति? नेह किञ्चित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं दृश्यते। भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये (प्रविश्यावलोक्य) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्। दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासताऽऽसां प्रतिमानाम्। किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः! अथवा यानि तानि भवन्तु। अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः।

अनुवाद –

सारथी – जैसी कुमार की आज्ञा। (रथ खड़ा करता है)

भरत – (रथ से उतरकर) सारथी, एकान्त में घोड़ों को आराम कराओ।

सारथी – जैसी आज्ञा। (प्रस्थान करता है)

भरत – (कुछ दूर जाकर पुनः देखकर) भली प्रकार से बिखेरे गये फूल तथा लाजा से मालूम पड़ता है कि ये देवताओं के पूजा के उपहार हैं। इनकी दीवारों पर पाँचों अङ्गुलियों के द्वारा चन्दन के छाप पाँच-पाँच पड़े हैं। मन्दिर के दरवाजे फूलों एवं

मालाओं से सुसज्जित किये गये हैं। मार्ग में कोमल तथा महीन रेंत बिछी हुई है। क्या यह सब किसी विशेष पर्व के उपलक्ष्य में किया गया है अथवा आस्तिक बुद्धि के कारण ऐसा प्रतिदिन होता है। पता नहीं, यह किसी देवता का स्थान है अथवा अन्य कुछ। परन्तु यहाँ कोई मन्दिर के बाहरी भाग पर ध्वज अथवा शस्त्र का चिह्न तो नहीं दिखाई पड़ता जिससे जाना जाये कि यह किसी देवता का मन्दिर है। अच्छा, भीतर प्रवेश करने पर जैसा होगा मालूम पड़ेगा। (भीतर जाकर और देखकर) अहो! इन पत्थरों पर कितनी महीन एवं सफाई से शिल्पकारी हुई हैं। इन मूर्तियों से कितनी स्पष्ट भावाभिव्यक्ति हो रही है कि देखकर आश्चर्य होता है। देवताओं की होती हुई भी ये मूर्तियाँ मनुष्य के जैसे – होने का विश्वास उत्पन्न करा रही हैं। क्या यहाँ चार देवताओं के समुदाय की प्रतिष्ठापना हुई है? जिससे चतुरायतन को प्रतीति हो रही है अथवा जो हो मुझे तो इन्हें देखकर अपार आनन्द हो रहा है।

मूलपाठ –

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः।

वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः ।।5।।

अन्वयः – दैवतमित्येव शिरः नमयितुं कामं युक्तम्। तु अमन्त्रार्चितदैवतः प्रणामः वार्षलः स्यात्।।5।।

व्याख्या – दैवतमित्येव–अत्र कोऽपि देवता इति बुद्धयैव शिरः नमयितुम्= नम्रीकर्त्तुं कामं युक्तम्। तु = किन्तु अमन्त्रार्चितं दैवतं न मन्त्रार्चितं न पूजितं दैवतं यत्र तथाभूतः प्रणामः वार्षलः = वृषलस्यायं वार्षलः = शूद्रवत् स्यात्। शूद्रो हि मन्त्रोच्चारणं विना देवतापूजनं करोति तथा च देवताज्ञाने सति कस्य देवस्य उच्चारयितव्यः निश्चयाभावात् अमन्त्रात्मकः प्रणामः कर्त्तव्यो भवेत् स च शूद्रवत् स्यात् तस्मात् प्रणामः शूद्रवत् करिष्यते। देवकुलिकः = देवकुले तिष्ठतीति देवकुलिकः = देवार्चने नियुक्तः। नैत्यकावसाने नित्ये भवः नैत्यकस्तस्य = नित्यकर्मणः अवसाने = अन्ते। प्राणिधर्मम् = जीवनार्थम् भोजनं ग्रहणम्। अल्पान्तराकृतिः–अल्पम् = ईषत् अन्तरः = भेदो यस्या सा अल्पान्तरा, अल्पान्तरा आकृतिर्यस्य सः अल्पान्तराकृतिः = अत्यन्तसदृशाकारवान्। नमोऽस्तु इति शब्देन भरतः प्रतिमामुद्दिश्य प्रणमति। ब्राह्मणभ्रमेण प्रणमन्तं भरतं देवकुलिकः वारयति–न खलु इति। भरतः निषेधन्तं देवकुलिकम् दृष्ट्वा वारणे कारणं जिज्ञासते–मा तावद् इत्यादि।।5।।

अनुवाद –

ये कोई देवता है ऐसा समझकर इन्हें प्रणाम करना उचित जान पड़ता है किन्तु इस प्रकार का प्रणाम प्रतिमा में देवता के निश्चय के अभाव से अमन्त्रकार्चा रहित शूद्र के समान होगा।।5।।

शब्दार्थ – दैवतम् = देवताओं की मूर्तियाँ, इत्येव = ऐसा समझकर, शिरः नमयितुम् = शिर झुकाना, युक्तम् = उचित ही है, प्रणामः तु = प्रणाम करना तो, मन्त्रार्चितदैवतः = मन्त्रों के बिना की गयी देवता की पूजा के समान, वार्षलः = अधम पुरुष के द्वारा की गयी पूजा।

टिप्पणी – वार्षलस्तु = वार्षलः+तु (विसर्ग सन्धि), अमन्त्रार्चितदैवतः = अमन्त्रेण अर्चित दैवतः येन सः (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

देवकुलिकः – भोः! नैत्यिकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः? भवतु प्रविश्य ज्ञास्ये। (प्रविशति)

भरतः – नमोऽस्तु!

देवकुलिकः – न खलु न खलु प्रणामः कार्यः!

भरतः – मा तावद् भोः!

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते।

किंकृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता।।6।।

अन्वयः – अस्मासु किञ्चिद् वक्तव्यम् (अथवा) विशिष्टः प्रतिपाल्यते। अयं प्रतिषेधः किं कृतः। अथवा नियमप्रभविष्णुता (कारणम्)।।6।।

व्याख्या – अस्मासु किञ्चिद् वक्तव्यम् दोषः अस्तीति शेषः। येन त्वम् मां निषेधसीत्यर्थः। अथवा विशिष्टः = मदपेक्षः या वरिष्ठः प्रतिपाल्यते = प्रतीक्ष्यते। अयम् मम प्रतिषेधः = वारणरूपः प्रतिषेधः किं कृतः केन कारणेनेति यावत्। अथवा नियमप्रभविष्णुता–नियमे प्रणामरूपे प्रभविष्णुता = स्वातन्त्र्यं तवेति शेषः। अयं प्रणमन्तुं प्रभवति अयं नेति विधये तव स्वतन्त्रः सामर्थ्यं किमति भावः। एतैः = भवदुक्तैः कारणैः हेतुभिः। देवताशङ्कया प्रतिमासु देवतात्वभ्रमेण। ब्राह्मणजनस्य कदाचिद् भवान् ब्राह्मणो भवेदित्याशङ्कया। ब्राह्मणमात्रस्य। परिहरामि = वारयामि। अयोध्याभारः = अयोध्याराजानः।

अनुवाद –

(पुजारी का प्रवेश)

पुजारी – अरे यह मूर्तियों के समान मिलते-जुलते रूप वाला कौन पुरुष है जो नित्यक्रिया कर लेने के पश्चात् मेरे भोजन के समय ही इस प्रतिमागृह में बिना पूछे घुस आया है। अच्छा! स्वयं प्रतिमागृह में जाकर इसका पता लगाता हूँ। (भीतर जाता है)

भरत – मूर्तियों को प्रणाम करते हैं।

पुजारी – नहीं नहीं, इन्हें प्रणाम मत करो।

भरत – क्यों मुझे प्रणाम करने से रोक रहे हो?

क्या हम में कोई दोष है अथवा हमारी अपेक्षा किन्हीं विशिष्ट व्यक्ति की प्रणाम के लिये प्रतीक्षा करते हो। अथवा इस प्रतिमागृह के अधिकारी होने के नाते तुम अपने आप नियम बनाने में स्वतन्त्र हो जिसे चाहे जाने दो जिसे चाहे न जाने दो।।6।।

शब्दार्थ – अस्मासु = मुझ भरत में, किञ्चिद् वक्तव्यम् = कुछ कहने योग्य, विशिष्टः = विशेष रूप से, प्रतिपाल्यते किम् = क्या प्रतीक्षा की जा रही है, प्रतिषेधः = प्रणाम करने का प्रतिषेध, नियमप्रभविष्णुता = नियम पालन की स्वतन्त्रता।

टिप्पणी – नियमप्रभविष्णुता = नियमानां प्रभविष्णुता (षष्ठी तत्पुरुष समास), किंकृतः = केन कारणेन कृतः (तृतीया तत्पुरुष समास), प्रतिषेधोऽयम् = प्रतिषेधः+अयम् (पूर्वरूप सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में आक्षेप अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

देवकुलिकः – न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम्। किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः।

भरतः – एवम्। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः। अथ के नामात्रभवन्तः?

देवकुलिकः – इक्ष्वाकवः।

भरतः – (सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति। एते तेऽयोध्याभर्तारः।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी–
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः।
एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती–
मेते ते, मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता।।7।।

अन्वयः – एते ते (ये) असुरपुरवधे देवतानाम् अभिसरीं गच्छन्ति। एते ते स्वसुकृतैः सपुरजनपदाः शक्रलोके यान्ति। एते ते (ये) स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमतीं प्राप्नुवन्तः। एते ये छन्दं मृगयता मृत्युना चिरम् अनवसिताः।।7।।

व्याख्या – एते ते (ये) असुरपुरवधे–असुरपुराणाम् = देवारिनगराणाम् वधे = विनाशे दैवतानाम् = देवसमूहानाम् अभिसरीम्–अभितः = परितः चरतीति साहाय्यार्थमभिगमनं कृत्वा गच्छन्तीति भावः। एते ते ये स्वसुकृतैः = स्वपुण्यैः सपुरजनपदाः–पुरैः जनपदैश्च सहिताः सपुरजनपदाः = पुरजनपदः जनैः सहिताः शक्रलोके = स्वर्गे गच्छन्ति। एते ते ये स्वभुजबलजिताम् = स्वभुजयोः बलेन = पराक्रमेण, जिताम् = स्वायत्तीकृताम् कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम् वसुमतीम् = रत्नगर्भाम् मेदिनीम्, प्राप्नुवन्तः = स्वायत्तीकृतवन्तः। एते ते ये छन्दसः स्वाभिलाषः = स्वाभिप्रायं वा मृगयता = अन्विष्यता मृत्युना = कालेन चिरम् = चिरकालपर्यन्तम् अनवसिताः = असमापिता अभक्षिता इत्यर्थः यतस्ते स्वच्छन्द मृत्यव आसन् अतएव मृत्युः प्रतीक्षते यत्कदा इमे स्वकीयं मरणमभिलषन्तीत्यर्थः। सुवदना वृत्तम्। 'ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरम नवयुता म्लौनः सुवदना' इति तल्लक्षणम् ।।7।।

अनुवाद –

पुजारी – नहीं, मेरे रोकने में ये कारण नहीं हैं जिससे आपको रोक रहा हूँ किन्तु इसलिये रोक रहा हूँ कि कहीं ब्राह्मण होकर इन राजाओं की मूर्ति को भ्रम से प्रणाम न कर लो क्योंकि ये क्षत्रियों की प्रतिमायें हैं, देवताओं की नहीं।

भरत – क्या कहा? ये क्षत्रिय महानुभाव हैं? तो इन महानुभावों का क्या नाम है?

पुजारी – ये इक्ष्वाकुवंशीय लोग हैं।

भरत – (प्रसन्नतापूर्वक) क्या ये वही इक्ष्वाकुवंशीय जो अयोध्या के नरेश होते आये हैं।

ये वही लोग हैं जो असुरों की पुरियों का विनाश करने के लिये देवताओं के साथ चारों ओर स्थित आगे रहकर उनकी सहायता करने के लिये इस मृत्युलोक से देवलोक जाते थे। ये वही लोग हैं जो अपने पुण्य बल से समस्त पुरवासियों एवं जनपदवासियों के साथ इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में जाते थे। ये वही लोग हैं जो अपनी भुजाओं के बल से जीती गई सम्पूर्ण रत्नगर्भा पृथ्वी पर शासन करते थे, किंबहुना ये वही लोग

हैं जो मृत्यु के द्वारा चाहे जाने पर भी अपनी इच्छानुसार मृत्यु के कारण देर तक कालकवलित नहीं हुए। अहा! अकस्मात् मुझे इस फल का महान् लाभ मिला। अच्छा बताइये ये कौन से महानुभाव हैं?।।7।।

शब्दार्थ – एते ते = क्या ये वही हैं जो, असुरपुरवधे = राक्षसों के नगर का विनाश करने में, देवतानाम् = देवताओं की, अभिसरीम् = सहायता के लिए, गच्छन्ति = जाते हैं, ते = ये वही हैं जो, स्वसुकृतैः = अपने पुण्यों से, स्वपुरजनपदा = अपने देश और प्रजा के साथ, शक्रलोके = इन्द्र लोक को, यान्ति = जाते हैं, एते ते = ये वही हैं जो, स्वभुजबलजिताम् = अपने बाहुबल से जीती गयी, कृत्स्नाम् = सम्पूर्ण, वसुमतीम् = पृथ्वीमण्डल को, प्राप्नुवन्ति = प्राप्त करते हैं, मृगयता = अन्वेषण करती हुई, मृत्युना = मृत्यु के द्वारा, चिरम् = बहुत काल के लिए, अनवसिताः = मुक्त कर दिए गए थे।

टिप्पणी – असुरपुरवधे = असुराणां पुराणि असुरपुराणि तेषां वधे (षष्ठी तत्पुरुष समास), सपुरजनपदाः = पुरैः जनपदैः सहिताः (अव्ययीभाव समास), स्वभुजबलजिताम् = स्वभुजयोः बलेन जिताम् (तृतीया तत्पुरुष समास), गच्छन्त्यभिसरीम् = गच्छन्ति+अभिसरीम् (यण् सन्धि), शक्रलोके = शक्रस्य लोकेः (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वसुकृतैः = स्वस्य सुकृतैः (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में सुवदना छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिः मरभनययुता म्लौ गः सुवदना।''** अर्थात् जिस छन्द में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, मगण, एक लघु और अन्त में एक गुरु वर्ण हो तथा सातवें और छठें वर्ण पर यति हो, वहाँ सुवदना छन्द होता है।

मूलपाठ –

भोः! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम्! अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्?

देवकुलिकः – अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः।

भरतः – नमोऽस्तु धर्मपरायणाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्?

देवकुलिकः – अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेक ब्राह्मणजनसहस्त्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः।

भरतः – अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः। नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्?

देवकुलिकः – अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः।

भरतः – नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय। (दशरथस्य प्रतिमामवलोकयन् पर्याकुलो भूत्वा) भोः! बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम्। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्?

देवकुलिकः – अयं दिलीपः।

भरतः – पितृपितामहो महाराजस्य। ततस्ततः।

देवकुलिकः – अत्र भवान् रघुः।

भरतः – पितामहो महाराजस्य। ततस्ततः।

अनुवाद –

अच्छा तो अनायास ही हमने महान् फल पा लिया। कहिए ये महानुभाव कौन हैं?

पुजारी – ये हैं महाराज दिलीप। जो सज्जनों में पृथ्वी के सारे रत्नों को दान में दिये जाने वाले विश्वजित् यज्ञ के प्रवर्तक एवं धर्मप्रदीप के प्रकाशक हैं।

भरत – ऐसे धर्मपरायण को मेरा नमस्कार। अच्छा आगे कहिये ये कौन से महानुभाव हैं?

पुजारी – ये हैं महाराज रघु जिनके शयन एवं प्रबोधकाल में अनेक ब्राह्मणों के द्वारा सहस्त्रों बार किये जाने वाले पुण्य आवाहन के शब्द उनके कानों को पूर्ण किया करते थे।

भरत – अहो यह मृत्यु कितनी बलवान् है जो पुण्य आवाहन के शब्दों से रक्षित इन महानुभाव का भी अतिक्रमण कर गई। ब्राह्मणों की सेवा में अपनी समग्र सम्पत्ति अर्पित करने वाले इन महाराज रघु को मेरा प्रणाम। ये आगे कौन है?

पुजारी – अपनी प्रियतमा महारानी के वियोग से विरक्त हो जाने पर अपने राज्यभार को त्याग देने वाले एवं नित्य प्रति किये जाने वाले यज्ञों के अन्त में अवभृथ स्नान से समस्त पापों को प्रक्षालित करने वाले ये हैं महाराज अज।

भरत – इस प्रकार के श्लाघनीय पश्चाताप करने वाले आपको नमस्कार। (दशरथ की प्रतिमा को देखते हुए घबड़ाकर) अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखने में लगे रहने पर भी बीच में कुछ ऐसी बात आ जाने के कारण मेरा मन उधर चला गया था इसलिये इन्हें ठीक से समझ न सका। अच्छा, पुनः कहिये कि ये कौन हैं?

पुजारी – यह हैं दिलीप।

भरत – महाराज के प्रपितामह। अच्छा, आगे चलिये।

पुजारी – ये हैं रघु।

भरत – महाराज के पितामह। इसके आगे।

मूलपाठ –

देवकुलिकः – अत्र भवानजः।

भरतः – पिता तातस्य। किमिति किमिति?

देवकुलिकः – अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः।

भरतः – भवन्तं किञ्चित्पृच्छामि। धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते?

देवकुलिकः – न खलु अतिक्रान्तानामेव।

भरतः – तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

देवकुलिकः – तिष्ठ।

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे? ।।8।।

अन्वयः – येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाः राज्यं च विसर्जिताः त्वं दशरथस्य इमां प्रतिमां किं नु पृच्छसे? ।।8।।

व्याख्या – येनेति–येन = राज्ञा दशरथेन स्त्रीशुल्कार्थे = पूर्वविवाहावसरे स्त्रियैः देयतया प्रतिज्ञातं द्रव्यं स्त्रीशुल्कम्। तदर्थे प्राणाः = जीवनं राज्यं च विसर्जिताः = परित्यक्ताः तस्य दशरथस्य इमां पुरोवर्तिनी प्रतिमाः प्रति त्वं किं नु = कस्मात् कारणात् न पृच्छसे = न ज्ञातुमिच्छसि। अनुष्टुप् छन्दः।।8।।

अनुवाद –

पुजारी – ये हैं अज।

भरत – महाराज के पिता। क्या कहा, क्या कहा?

पुजारी – ये दिलीप हैं, ये रघु हैं और ये अज हैं।

भरत – अब आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ। क्या जीवितों की भी प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं?

पुजारी – नहीं, जो लोग मर चुके हैं केवल उन्हीं की।

भरत – तो अब आप मुझे जाने की अनुमति दीजिये।

पुजारी – ठहरिये।

जिन्होंने स्त्री-शुल्क के लिये अपने राज्य एवं प्राण दोनों दे दिये उन महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्यों कुछ नहीं जानना चाहते।।8।।

शब्दार्थ – येन = जिसके द्वारा, स्त्रीशुल्कार्थे = पत्नी कैकेयी का वचन पूर्ण करने के लिए, प्राणाः राज्यं च = प्राण और राज्य दोनों का, विसर्जिताः = विसर्जन कर दिया, इमाम् = इस, दशरथस्य = महाराज दशरथ की, प्रतिमाम् = प्रतिमा के बारे में, किम् = क्यों, न पृच्छसे = नहीं पूछ रहे हो।

टिप्पणी – स्त्रीशुल्कार्थे = स्त्रियः शुल्कार्थे (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्राणाश्च = प्राणाः+च (विसर्ग सन्धि), विसर्जिताः = वि+सृज+क्त, प्रतिमाम् = द्वितीया विभक्ति एकवचन, दशरथस्य = षष्ठी विभक्ति एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

भरतः – हा तात! (मूर्च्छितः। पुनः प्रत्यागत्य)

हृदय! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत्।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द–
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः।।9।।

अन्वयः – हे हृदय! सकामं भव। यत्कृते त्वं शङ्कसे तत् पितृनिधनं शृणु। तावद् धैर्यं च गच्छ यदि अयं नीचः शुल्कशब्दः माम् स्पृशति अथ च सत्यं भवति तदा तत्र देहः विशोध्यः भवेत्।।9।।

व्याख्या – हृदय इति–हे हृदय = हे चित्त सकामं = सफलमनोरथं भव। त्वं यत्कृते = यस्मिन् विषये शङ्कसे = संदिहानः आसीः तत् स्वाशङ्कितं पितृ मरणरूपं विषयं शृणु निःशङ्कमाकर्णय। त्वया मध्ये मार्ग जायमानैरपशकुनैरन्ये विकृतलक्षणैश्च

यत्पितृमरणं संभावितम् तदेवाधुना संशृण्वन्नात्मनः मनोऽभिलाषं पूरय इति स्पष्टार्थः। तावद् धैर्यं = धीरतां च गच्छ = अवलम्बस्व। तु–किन्तु अयं नीचः = अधमः शुल्कशब्दः यदि मां स्पृशति = मामुद्दिश्य कथितो भवेत् यदि स्त्रीशुल्कतया मद्राज्याभिषेक एवैतस्य कथनाभिप्रायः अथ चैतत् सत्यं भवेत्तदा तत्र तादृशायामवस्थायां देहः = शरीरम् विशोध्यः = प्रायश्चित्तादिना संशोध्य इत्यर्थः। मालिनी वृत्तम्। 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'। इति तल्लक्षणम्।।9।।

अनुवाद –

भरत – हाय पिताजी! (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो गिर जाते हैं पुनः होश में आकर) .

हृदय! अब तुम्हारी वह अभिलाषा पूर्ण हुई जिसकी तुम आशङ्का करते थे, इस पितृमरण के वृत्तान्त को सुनो और धीरज धरो। किन्तु हाय! यदि इस नीच शुल्क शब्द का उद्देश्य मुझसे है और यदि यह सत्य है, तब तो इस देह की शुद्धि करनी पड़ेगी।।9।।

शब्दार्थ – सकामम् = सन्तुष्ट, भव = हो जाओ, त्वं यत्कृते = तुम जिसके लिए, शङ्कसे = शंका करते हो, तत् = वह, पितृनिधनम् = पिता दशरथ के मृत्यु का समाचार, शृणु = सुनो, धैर्यं च गच्छ = और धैर्य धारण करो, नीचः = अधम, मां स्पृशति = मेरा स्पर्श कर रहा है, अथ च = और यदि यह, सत्यं भवति = सत्य होता है तो, देहः विशोध्यः = शरीर को निरपराध सिद्ध करना होगा।

टिप्पणी – सकामम् = कामेन सहितम् (अव्ययीभाव समास), पितृनिधनम् = पितुः निधनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), यत्कृते = यस्य कृते (षष्ठी तत्पुरुष समास), शङ्कसे = मध्यम पुरुष, एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में मालिनी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकैः।''** अर्थात् जहाँ दो नगण, एक मगण और दो यगण हों, तो वहाँ मालिनी छन्द होता है।

मूलपाठ –

आर्य!

देवकुलिकः – आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम्। कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु?

भरतः – अथ किम्, अथ किम्। दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः।

देवकुलिकः – तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

भरतः – तिष्ठ। शेषमभिधीयताम्।

देवकुलिकः – का गतिः? श्रूयताम्। उपरतस्तत्रभवान् दशरथः।
सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने।

अनुवाद –

आर्य!

पुजारी – आर्य इस शब्द का प्रयोग तो वार्तालाप के प्रसङ्ग में इक्ष्वाकुवंशियों की परम्परा है तो आप कैकेयी के पुत्र भरत है क्या?

भरत – और क्या और क्या! मैं वही दशरथपुत्र भरत हूँ किन्तु कैकेयी का पुत्र भरत नहीं।

पुजारी – तो अब जाने के लिये आपकी अनुमति चाहता हूँ।

भरत – ठहरो। अभी शेष भी कहो।

पुजारी – अब तो बचने का कोई उपाय नहीं रहा। अच्छा सुनिये। पूज्य महाराज दशरथ तो मर गये। किन्तु सीता और लक्ष्मण के साथ राम क्यों वन चले गये इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं।

मूलपाठ –

भरतः – कथं कथमार्योऽपि वनं गतः। (द्विगुणं मोहमुपगतः)

देवकुलिकः – कुमार! स्माश्वसिहि समाश्वसिहि।

भरतः – (समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव।।10।।

अन्वयः – पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्यां पिपासार्तः क्षीणतोयाम् नदीम् इव अनुधावामि।।10।।

व्याख्या – परलोकगतेन पित्रा दशरथेन, वनवासगतेन भ्रात्रा रामेण च वर्जिताम् = रहिताम् अतएव अटवीभूताम् = अरण्यसदृशीम् अयोध्याम् = स्वजन्मस्थलीम् पिपासार्तः–पिपासया = तृष्णा आर्तः = आतुरः = पीडितः अहम् क्षीणतोयाम्–क्षीणम् = शुष्कम्, तोयं = जलम् यस्यास्तथाभूतां नदीम् = सरितमिव अनुधावामि = शीघ्रतया गन्तुं प्रवृत्तोऽस्मि। अयं भावः–यथा कोऽपि तृषितः निर्जला नदीमनुगच्छन् विफलप्रयासो भवति तथाहमपि पितृभ्रातृरहितां सर्वथारण्यसदृशीं स्नेहशून्याम् अयोध्यां प्रविशामि। तत्राभिलाषपूर्तेरसंभवादित्यर्थः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।।10।।

अनुवाद –

भरत – क्या कहते हो! आर्य भी वन चले गये (द्विगुणित मूर्च्छित हो जाते हैं)

पुजारी – कुमार! धीरज धरिये, धीरज धरिये।

भरत – (होश में आकर) पिता और भाई से शून्य अरण्य के समान उस अयोध्या में मैं व्यर्थ का दौड़ता हुआ जा रहा हूँ। जिस प्रकार कोई प्यासा मरुस्थल में सूखी नदी की ओर दौड़ता हुआ जाता है।।10।।

शब्दार्थ – पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् = पिता और भाई से रहित, अटवीभूताम् = वन की तरह प्रतीत होने वाली, अयोध्याम् = अयोध्या नगरी के लिए, पिपासार्तः = प्यास से व्याकुल व्यक्ति, क्षीणतोयाम् = जल से रहित, अनुधावामि = दौड़ रहा हूँ।

टिप्पणी – पिपासार्तः = पिपासया आर्तः (तृतीया तत्पुरुष समास), क्षीणतोयाम् = क्षीणं तोयं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), पित्रा = तृतीया विभक्ति एकवचन, भ्रात्रा = तृतीया विभक्ति एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ–

आर्य! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति। तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम्।

देवकुलिकः – श्रूयतां, तत्रभवता राज्ञाभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याऽभिहितं किल।

भरतः – तिष्ठ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसन्त्या व्रज सुत! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः।।11।।

अन्वयः – तं शुल्कदोषं स्मृत्वा मम सुतो राजा भवतु इति (तया) अभिहितम्। तद् धैर्येण आश्वसन्त्या तया हे सुत वनं व्रज इति आर्यः अभिहितः (भवेत्)। तं बद्धचीरं दृष्ट्वा राजा असदृशम् निधनम् गतः ननु। प्रकृतिभिः शेषाः सदृशाः धिक्प्रलापाः मयि पात्यन्ते ननु ।।11।।

व्याख्या – तं स्मृत्वेति–तं = पूर्वोक्तम् शुल्कदोषम्–शुल्कस्य दोषम् = अनर्थकारकम् वैवाहिकपणम् स्मृत्वा = मनसि निधाय 'मम सुतो भरतः राजा भवतु' इति कैकेय्या राज्ञेऽभिहितम् उक्तम्। तद्धैर्येण स्वोक्तार्थस्य राज्ञा स्वीकृतत्वेन पुत्रकर्तृकराज्यत्वप्राप्तेरित्यर्थः। आश्वसन्त्या 'ससन्तोषम्' विश्वसन्त्या तया हे सुत 'वनं व्रज' इति आर्यः अपि = रामः अपि अभिहितः = आज्ञप्तः। तम् आर्य = रामम् बद्धचीरम्–बद्धानि वने वासार्थम् परिहितानि चीराणि = वल्कलवसनानि येन तम्। दृष्ट्वा = विलोक्य राजा = पिता दशरथः असदृशम् = अयोग्यम् स्वरूपविरुद्धम् निधनम् = मत्युं गतः। ननु = निश्चये। पुत्रशोका स्वप्राणान् जहौ इत्यर्थः। अधुना प्रकृतिभिः अमात्यादिभिः पुरोगैः = पुरोवासिभिः शेषाः = अवशिष्टाः धिक्प्रलापाः = धिक्कारयुक्तानि वचनानि सदृशाः उचिताः मयि = भरते पात्यन्ते = निधीयन्ते निक्षिप्यन्ते वा ननु इति सम्भवनार्थे। सुवदनावृत्तम्। लक्षणं प्रागुक्तम्।।11।।

अनुवाद –

आर्य! इस विषय में विस्तृत विवरण सुनने से मेरा मन स्थिर हो सकेगा। अतः आप सारी बातें पूर्ण रूप से मुझसे कहिये।

पुजारी – अच्छा सुनिये। जब पूज्य राम का तत्रभवान् महाराज अभिषेक कर रहे थे उस समय आपकी माता ने कहा।

भरत – अच्छा ठहरो।

विवाहकालीन शुल्क (शर्त) जो सर्वथा दोषपूर्ण थी उसका स्मरण कर इस कैकेयी ने कहा होगा कि मेरा पुत्र राजा होवे। जब महाराज ने अपने धैर्य से इस प्रकार का वरदान देकर उसे आश्वस्त किया होगा तो उसने हे सुत 'तुम वन जाओ' ऐसा राम से कहा होगा। तदनन्तर वनवासोचित चीर परिधान से युक्त देखकर राजा भी उसी असमय में मृत्यु को प्राप्त हुए होंगे। फिर तो सारी प्रजायें मुझे ही सभी अनर्थों का मूल मानकर धिक्कार रही होगीं जो उनके लिए उचित भी है।।11।।

शब्दार्थ – तम् = उस, शुल्कदोषम् = शुल्क के दोष को, स्मृत्वा = स्मरण करके, मम सुतः = मेरा पुत्र, राजा भवतु = राजा बने, तया = कैकेयी के द्वारा, अभिहितम् = कहा गया, आश्वसन्त्यः = आश्वस्त होना, वनं व्रज = वन जाओ, आर्यः = राम, बद्धचीरं दृष्ट्वा = चीर धारण किए हुए देखकर, राजा = पिता दशरथ की, असदृशम् = अकाल, निधनं गतः = मृत्यु हो गई, प्रकृतिभिः = प्रजाओं के द्वारा, सदृशाः = अनुकूल, धिक्प्रलापा = धिक्कार युक्त वचन, मयि = मुझ भरत पर।

टिप्पणी – शुल्कदोषम् = शुल्कस्य दोषम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), बद्धचीरम् = बद्धः चीरः येन सः (बहुव्रीही समास), असदृशम् = न सदृशम् (नञ् तत्पुरुष समास), राजेत्यभिहितम् = राजा+इत्यभिहितम् (गुण सन्धि), राजेत्यभिहितम् = राजेति+ अभिहितम् (यण् सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में सुवदना छन्द है।

बोध प्रश्न

1) प्रतिमागृह में किनकी प्रतिमाएं थीं?

.....

.....

.....

2) दिलीप ने कौन सा यज्ञ किया था?

.....

.....

.....

3) 'सकामम्' पद का समास विग्रह कीजिए।

.....

.....

.....

4) 'अटवी' पद का क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

5) 'असदृशम्' पद में कौन सा समास है?

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1) 'हृदय! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

10.3 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि सुधाकार (सफाईकर्मी) प्रतिमागृह की स्वच्छता का कार्य पूरा करके विश्राम करने लगता है तभी एक सिपाही आकर उसे मारता है। सिपाही सफाईकर्मी से पूछता है कि प्रतिमागृह की स्वच्छता का कार्य पूर्ण हुआ या नहीं क्योंकि आज महाराज दशरथ की प्रतिमा को देखने के लिए प्रतिमागृह में कौशल्या आदि सभी रानियाँ आने वाली हैं। सफाईकर्मी बताता है कि वहाँ सफाई का कार्य पूर्ण कर लिया गया है। वहाँ लगे कबूतरों के घोंसले हटा दिए गए हैं। दीवारों पर सफेदी करवा दी गई है। चन्दन से पाँच अँगुलियों की छापें लगवा दी गई हैं तथा दरबों को पुष्प मालाओं से सजा दिया गया है। सिपाही इस वृत्तान्त से मन्त्री को अवगत कराता है। तभी सारथि के साथ भरत का प्रवेश होता है। भरत अपने ननिहाल से आ रहे हैं। उन्हें दशरथ की मृत्यु का पता नहीं है किन्तु इतना अवश्य ज्ञात है कि महाराज दशरथ अत्यधिक रुग्ण हैं। नाना आशंकाओं के बीच मार्ग में चलते हुए भरत रथ की तीव्र गति का वर्णन करते हैं तथा सारथि उनका समर्थन करता है। भरत देवमन्दिर में प्रविष्ट होते हैं और पूर्वजों की प्रतिमाओं को प्रणाम करने के क्रम में वहाँ लगी दशरथ की प्रतिमा को देखते हैं। देवकुलिक उन्हें प्रत्येक राजा का परचिय देता हुआ उन राजाओं के द्वारा किए गए विशिष्ट कार्यों का भी उल्लेख करता है। दशरथ की प्रतिमा का परिचय देते हुए देवकुलिक भरत से कहता है कि जिन्होंने स्त्री शुल्क के कारण अपने प्राण और राज्य दोनों छोड़ दिए आप उन महाराज दशरथ की मूर्ति के बारे में क्यों नहीं पूछ रहे? भरत के मन में दशरथ की मृत्यु के विषय में पहले से ही आशंका थी वह देवकुलिक के वचन से सत्य सिद्ध होती है। वार्तालाप के क्रम में देवकुलिक भरत को बताता है कि महाराज दशरथ दिवंगत हो गये हैं तथा सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन चले गए हैं। भरत पिता दशरथ तथा भाई राम से रहित अयोध्या को जंगल की संज्ञा देते हैं और अपनी माता के द्वारा किए गए इस कुकृत्य को जानकर मूर्च्छित हो जाते हैं। उसी समय वहाँ कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी पहुँचती हैं।

10.4 शब्दावली

भिषजः	–	चिकित्सक
द्रुमाः	–	वृक्ष
उपगताः	–	पास आए हुए थे
प्रवासम्	–	वनगमन
इत्येव	–	ऐसा समझकर
नियमप्रभविष्णुता	–	नियम पालन की स्वतन्त्रता
वसुमतीम्	–	पृथ्वीमण्डल को
शृणु	–	सुनो
पिपासार्तः	–	प्यास से व्याकुल व्यक्ति
धनं गतः	–	मृत्यु हो गई

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

i) प्रतिमानाटकम् (अनु.) डॉ. श्री कृष्ण ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर ।

ii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) डॉ. सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006

iii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

iv) प्रतिमानाटकम् (सम्पा.) श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2016

v) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (ले.) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018

10.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) प्रतिमागृह में इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रियों की प्रतिमाएं थीं।

2) दिलीप ने विश्वजित् यज्ञ किया था।

3) 'सकामम्' पद का समास विग्रह – कामेन सहितम्।

4) 'अटवी' पद का तात्पर्य है – वन।

5) 'असदृशम्' पद में नञ् तत्पुरुष समास है।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 11 प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क) – भाग 4

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क) – श्लोक 12-24

11.3 सारांश

11.4 शब्दावली

11.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कैकेयी और भरत के संवाद में निहित प्राचीन राज्यव्यवस्था के अंगों को जान सकेंगे।
- भरत की न्यायप्रियता तथा भ्रातृप्रेम से अवगत हो सकेंगे।
- अपयश से मनुष्य की क्या दशा होती है, यह जान सकेंगे।
- भाई-भाई के प्रेम का उत्तम उदाहरण देख सकेंगे।
- बन्धुत्व के सामने राज्य की तुच्छता को भी जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने यह पढ़ा था कि भरत अपने ननिहाल से आते हैं तथा उन्हें अयोध्या के बाहर ही एक मन्दिर में जाने से यह ज्ञात होता है कि महाराज दशरथ दिवंगत हो गए हैं, महाराज दशरथ की प्रतिमा को देखकर भरत मूर्च्छित हो जाते हैं। उसी समय वहाँ पर राजमातायें भी आ जाती हैं। इस इकाई में आप देखेंगे कि राजमाताओं को यह ज्ञात होता है कि भरत मूर्च्छित हो गए हैं। इससे रानियाँ अत्यन्त दुःखित होती हैं। चेतना आने पर भरत माताओं से पूछते हैं कि आपकी क्या दशा है? उत्तर में रानियाँ घूँघट खोलकर अपनी अवस्था दिखाती हैं। भरत अत्यधिक दुःखी होते हैं तथा कौशल्या और सुमित्रा के साथ कैकेयी को देखकर उसे धिक्कारते हुए कहते हैं कि तुम मेरी इन दोनों माताओं कौशल्या और सुमित्रा के साथ उसी प्रकार शोभा को प्राप्त नहीं कर रही हो जैसे गंगा और यमुना के बीच कोई क्षुद्र नदी सुशोभित नहीं होती। भरत कैकेयी के इस कूट कर्तव्य से अत्यन्त दुःखी होते हैं तथा कहते हैं कि तुमने हमें अपयश का भागी बना दिया है। राम को अयोध्या से निकालना तुम्हारे लिए कैसे सम्भव हुआ ये मेरी समझ में नहीं आता। कौशल्या आदि भरत को समझाती हैं कि यह कैकेयी तुम्हारी माता है किन्तु भरत भावना के आवेश में कहते हैं कि यह पहले मेरी माता थी अब तो आप ही मेरी माँ हैं। इस प्रसंग में भरत कैकेयी को बहुत अधिक धिक्कारते हैं। वह वंश परम्परा के अनुसार राम के राज्याभिषेक को ही उचित ठहराते हैं। भरत राम, लक्ष्मण और सीता के वनगमन का करुणापूर्ण बिम्ब उपस्थित

करते हैं। कैकेयी भरत को समझाने का प्रयास करती है किन्तु वह उसकी कोई भी बात सुनने को तैयार नहीं होते और अपनी धिक्कार से कैकेयी को निरुत्तर कर देते हैं। अन्त में भरत चित्रकूट जाने के लिए तैयार होते हैं। वह कहते है यह अयोध्या अयोध्या नहीं रही अयोध्या तो वह है जहाँ राम निवास कर रहे हैं।

11.2 प्रतिमानाटकम् (तृतीय अङ्क) – श्लोक 12-24

मूलपाठ – **(मोहमुपगतः)**

(नेपथ्ये)

उत्सरतार्याः उत्सरत। (उस्सरह अय्या! उस्सरह!)

देवकुलिकः – (विलोक्य) अये,

काले खल्वागता देव्यः पुत्रे मोहमुपागते।

हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः।।12।।

अन्वयः – पुत्रे मोहम् उपागते देव्यः काले आगताः खलु। मातृणां हस्तस्पर्शः अजलस्य जलाञ्जलिः।।12।।

व्याख्या – काले इति। पुत्रे = भरते, मोहम् = मूर्च्छितावस्थाम्, उपागते = सम्प्राप्ते, देव्यः = कौशल्यादयः मातरः, काले = उचितावसरे, आगताः = सम्प्राप्ताः, खलु = निश्चयार्थे, मातृणाम् = कौशल्यादिजननीनाम्, हस्तस्पर्शः = पाणिस्पर्शः, अजलस्य = जलरहितस्य, जलार्थिनः कृते = जलाञ्जलिः जलदानेनोज्जीवनम् इव भवति। यथा कश्चन तृषार्त्तः जलप्राप्त्या पुनः प्राणिति तथा मोहमुपगतो भरतः मातृणां हस्तस्पर्शेन स्वां प्रकृतिमुपयास्यतीत्यर्थः। पूर्ववाक्यार्थस्योत्तरवाक्यार्थेन समर्थनात् काव्यलिङ्गनामालङ्कारः अनुष्टुप् छन्दः।।12।।

अनुवाद – (अचेत हो जाते हैं)

(नेपथ्य)

हटो, सज्जनों हट जाओ।

पुजारी – (देखकर) अरे!

अपने पुत्र भरत के अचेत होते ही ये देवियाँ ठीक समय पर यहाँ आ पहुँचीं क्योंकि पुत्र के लिये माताओं के हाथ का स्पर्श प्यासे को जलाञ्जलि के समान उज्जीवनकारक होता है।।12।।

शब्दार्थ – पुत्रे = पुत्र भरत के, मोहम् उपागते = मूर्च्छित हो जाने पर, काले = उचित समय पर, आगताः = आई हुई, मातृणाम् = माताओं का, हस्तस्पर्शः = हाथ का स्पर्श, अजलस्य = बिना जल की, जलाञ्जलिः = जल की अंजलि।

टिप्पणी – हस्तस्पर्शः = हस्तेन स्पर्शः (तृतीया तत्पुरुष समास), जलाञ्जलिः = जलस्य अञ्जलिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), खल्वागता = खलु+आगता (यण् सन्धि), उपागते = उप+आगते (दीर्घ सन्धि), मातृणाम् = षष्ठी विभक्ति बहुवचन।

प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास और निदर्शना अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।

षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छनद होता है।

मूलपाठ –

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः – इत इतो भवत्यः।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते।।13।।

अन्वयः – यस्य स समुच्छ्रयः हर्म्यदुर्लभः तदिदं नः प्रतिमानृपस्य गृहम्। यदिदम् अप्रतिहारिकागतः अयन्त्रितैः पथिकैः विनैव प्रणामं उपास्यते।।13।।

व्याख्या – इदमिति। यस्य स समुच्छ्रयः = औन्नत्यम् हर्म्यदुर्लभः = प्रासादापेक्षयापि दुरापः तदिदं प्रसिद्धम्, नः = अस्माकम् प्रतिमानृपस्य = प्रतिमारूपेणावस्थितस्य राज्ञः गृहम् अस्तीति शेषः। यदिदं प्रतिमागृहम् अप्रतिहारिका गतैः = प्रतिहारिकाद्वारे नियुक्ता स्त्री तन्नरपेक्ष्येण प्रविष्टः एवम् अयन्त्रितैः = कपाटादिनियन्त्रणरहितःकारणादवारितैः पथिकैः = अध्वगैः विना प्रणामम् = अन्तरेण नमस्कारम्, मार्गश्रमापनोदनाय = निशातिवाहनाय वा उपास्यते = अध्युष्यते। साक्षान्नृपस्य भवनं तु प्रतीहारद्वारागतैः पदे पदे नियन्त्रितैः प्रणामादिः समुचितशिष्टाचारपूर्वकमेव प्रवेश्यते = सेव्यते च। इदं प्रतिमागृहं तु निरवरोध पथिकः प्रविश्यते प्रमाणादिकमन्तरेणैव अध्युष्यते चेति प्रतिमागृहस्य न्यूनतावर्णनात् व्यतिरेकालङ्कारः। वंशस्थं वृत्तम्।।13।।

अनुवाद –

(देवियों एवं सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र – तत्र भवती देवियों, इधर इधर।

जिसकी ऊंचाई राजप्रसादों से भी अधिक है यह वही महाराज दशरथ का प्रतिमागृह है जिसमें प्रतीहारी के बिना ही पथिक लोग बे-रोकटोक बिना प्रणाम किये ही निवास करते हैं।।13।।

शब्दार्थ – यस्य = जिसका, हर्म्यदुर्लभः = दुर्लभ महल, समुच्छ्रयो =उन्नत, प्रतिमानृपस्य = महाराज दशरथ की मूर्ति का, अयन्त्रितैः = बिना रोक-टोक के, प्रतिहारिकागतैः = पहरेदारों की आज्ञा के बिना आये हुए, पथिकैः = यात्रियों द्वारा।

टिप्पणी – हर्म्यदुर्लभः = हर्म्येषु दुर्लभः (सप्तमी तत्पुरुष समास), अप्रतिहारिकागतैः = अप्रतिहारिकेण आगतैः (तृतीया तत्पुरुष समास), अनियन्त्रितैः = न यन्त्रितैः (नञ् तत्पुरुष समास), पथिकैरुपास्यते = पथिकैः+उपास्यते (विसर्ग सन्धि), प्रतिमानृपस्य = प्रतिमा एवं नृपः यस्मिन् (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार और वंशस्थ छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ''** अर्थात् जिस छन्द में जगण, तगण, रगण हों वहाँ वंशस्थ छन्द होता है।

मूलपाठ –

(प्रविश्यावलोक्य) भवत्यः! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्।

अयं हि पतितः कोऽपि वयःस्थ इव पार्थिवः।

देवकुलिकः –

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम्।।14।।

अन्वयः – हि अयम् कोऽपि वयस्थः पार्थिव इव भूमौ पतितः। परशङ्काम् कर्तुम् अलम्। अयम् भरतः गृह्यताम्।।14।।

व्याख्या – अयमिति। हि = यतः अयम् पुरो दृश्यमानः कोऽपि वयस्थः = तरुणः पार्थिवः दशरथ इव भूमौ पतितः अस्ति। परस्य–अनात्मीयस्य शङ्काम् = वितर्क कर्तुमलं मा वृथाः। परोऽयमिति मा शङ्किष्ठा अयं भरतः, अतः गृह्यताम् वीजनादिकोपचारेण अङ्के आरोप्य प्रकृतावानेतुं प्रयत्यतामित्यर्थः।।14।।

अनुवाद –

(भीतर जाकर तथा देखकर)

देवियों! इस मन्दिर के भीतर मत आइये, मत आइये। यहाँ पर तरुणावस्था से सम्पन्न कोई राजा जैसा पुरुष मूर्च्छित होकर पड़ा हुआ है।

पुजारी – किन्तु यह कोई दूसरा है ऐसी शङ्का आप लोग मत कीजिये। इन्हें उठाइये। ये कुमार भरत हैं।।14।।

शब्दार्थ – हि = निश्चित रूप से, वयःस्थ = युवावस्था को प्राप्त, पार्थिवः = राजा, पतितः = पड़ा है, परशङ्काम् = दूसरे लोगों की आशंका, अयम् भरतः = यह भरत है।

टिप्पणी – वयःस्थ = वयसि स्थितः (सप्तमी तत्पुरुष समास), परशङ्काम् = परस्य शङ्काम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), कोऽपि = कः अपि (विसर्ग सन्धि), ह्ययम् = हि+अयम् (यण् सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

(निष्क्रान्तः)

देव्यः – (सहसोपगम्य) हा जात! भरत! (हा जाद! भरद!)

भरतः – (किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य!

सुमन्त्रः – जयतु महा (इत्यर्धोक्ते सविषादम्) अहो स्वरसादृश्यम्। मन्ये प्रतिमास्थो महाराजो व्याहरतीति।

भरतः – अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था।

देव्यः – जात! एषा नोऽवस्था। (अवगुण्ठनमपनयन्ति) (जाद! एसा णो अवत्था।)

सुमन्त्रः – भवत्यः! निगृह्यतामुत्कण्ठा।

भरतः – (सुमन्त्रं विलोक्य) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति। कच्चित् तात! सुमन्त्रो भवान् ननु?

सुमन्त्रः – कुमार, अथ किम्। सुमन्त्रोऽस्मि।

अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः।।15।।

अन्वयः – चिरजीवदोषैः अन्वास्यमानः (लोकैः) कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने शून्यस्य रथस्य सूतः जीवामि।।15।।

व्याख्या – अन्वास्येति। चिरजीवदोषैः = बहुकालपर्यन्तं यज्जीवनं तस्य दोषैः राजनि राजपुत्रे राजमातरि राज्ये चोपनिपतितैर्दुःखैः अन्वास्यमानः = अनुगम्यमानः कृतघ्नभावेन = कृतघ्नतया च विडम्ब्यमानः = उपहास्यमानः लोकः कृतघ्नोऽयम् स्वस्वामिनि मृतेऽद्यापि जीवतीत्येवमरूपेणेति शेषः अहं = सुमन्त्रः हि निश्चयेन तस्मिन् प्रसिद्ध नृपतौ = राज्ञि दशरथे विपन्ने = मृते शून्यस्य = तेन रहितस्य रथस्य सूतः = चालकः सन् जीवामि = प्राणान् धारयामि। अनेन महान् शोको व्यज्यते। उपजातिश्छन्दः।।15।।

अनुवाद –

(पुजारी का प्रस्थान)

देवियाँ – (शीघ्रतापूर्वक पास में जाकर) हाय! बेटा! भरत!

भरत – (कुछ होश में आकर) आर्य!

सुमन्त्र – जय हो (इस प्रकार आधा ही वाक्य कहने पर दुःख से) आश्चर्य! आश्चर्य! कितना स्वर सादृश्य है। मैंने समझा कि मूर्ति में से महाराज ही बोल रहे हैं।

भरत – इस समय माताओं की क्या दशा है?

देवियाँ – (घूँघट हटाती हैं) यही है हमारी अवस्था।

सुमन्त्र – आप लोग अपने शोक का आवेग रोकिये।

भरत – (सुमन्त्र को देखकर) समस्त शिष्टोचित आचरणों एवं रानियों के सन्निधान में रहने से मालूम पड़ता है कि आप ही सुमन्त्र हैं।

सुमन्त्र – कुमार! और क्या, मैं ही सुमन्त्र हूँ।

मेरी लम्बी आयु ने मुझमें अनेक बुराइयां ला दी हैं। 'यह कृतघ्न है' ऐसा कहकर लोग मेरी हँसी उड़ाते हैं। हाय मैं राजा के मर जाने पर भी उनसे रहित इस शून्य रथ का सञ्चालक होकर अभी भी जी रहा हूँ।।15।।

शब्दार्थ – चिरजीवदोषः = लम्बी अवधि तक जीने का दोष, अन्वास्यमानः = बँधा हुआ, कृतघ्नभावेन = कृतघ्न भाव से, विडम्ब्यमानः = उपहास का पात्र होता हुआ, तस्मिन् नृपतौ = महाराज दशरथ के, विपन्ने = मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर भी।

टिप्पणी – चिरजीवदौषैः = चिरजीवस्य दौषैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अन्वास्यमानः = अनु+आस्+यत्+शानच् (कर्मवाच्य), विपन्ने = वि+पद्+क्त (सप्तमी एकवचन), जीवामि = लट् लकार, उत्तम पुरुष एकवचन।

प्रस्तुत श्लोक में उपजाति छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।''** अर्थात् जिस छन्द के

चरणों में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण चरणभेद से उपलब्ध हों, वहाँ उपजाति छन्द होता है।

मूलपाठ –

भरतः – हा तात! (उत्थाय) तात! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातॄणाम्।

सुमन्त्रः – बाढम्। इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौशल्या।

भरतः – अम्ब! अनपराद्धोऽहमभिवादये।

कौशल्या – जात! निःसन्तापो भव। (जाद! णिस्सन्दावो होहि।)

भरतः – (आत्मगतम्) आक्रुष्ट इवास्म्यनेन। (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्ततः।

सुमन्त्रः – इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा।

अनुवाद –

भरत – हा पितः! (उठकर) पितः! अच्छा सुमन्त्र! मैं अपनी पूज्य माताओं को प्रणाम करने के लिये उनकी ज्येष्ठता, मध्यमता एवं कनिष्ठता का क्रम जानना चाहता हूँ।

सुमन्त्र – अच्छा ठीक है। यह हैं तत्र भवती राममाता कौशल्या।

भरत – माँ, मैं निर्दोष हूँ। आपका अभिवादन करता हूँ।

कौशल्या – पुत्र! तुम सन्तापरहित होओ।

भरत – (अपने आप) इन शब्दों से तो मैं उपालम्भित सा हो रहा हूँ। (प्रकट रूप में) अनुगृहीत हुआ। अच्छा आगे।

सुमन्त्र – ये हैं तत्र भवती लक्ष्मण की माता सुमित्रा।

मूलपाठ –

भरतः – अम्ब! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये।

सुमित्रा – जात! यशोभागी भव। (जाद! जसोभाई होहि।)

भरतः – अम्ब! इदं प्रयतिष्ये। अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्ततः।

सुमन्त्रः –इयं ते जननी।

भरतः – (सरोषमुत्थाय) आः पापे!

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता।।16।।

अन्वयः – मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं गङ्गायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव न शोभसे।

व्याख्या – मम मातुः = कौशल्यायाः, मातुः = सुमित्रायाश्च एवमुभयो मध्यस्था = मध्ये वर्तमाना त्वं गङ्गायमुनयोः–गङ्गा च यमुना च तयोः मध्ये = अन्तराले प्रवेशिता कुनदी = क्षुद्रा सरित् इव यथा न शोभसे न शोभामावहसीति भावः। उपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।।16।।

अनुवाद –

भरत – अम्ब! मैं लक्ष्मण से सेवा के विषय में ठगा गया। तुम्हें प्रणाम।

सुमित्रा – पुत्र यशस्वी बनो।

भरत – इसी यशःप्राप्ति के लिये प्रयत्न करूंगा। अनुगृहीत हुआ। आगे।

सुमन्त्र – यह तुम्हारी माता हैं।

भरत – (क्रोधपूर्वक उत्तेजित से होकर) आह पापिनि!

मेरी माता (कौशल्या) एवं अन्य माता (सुमित्रा) के बीच में बैठी हुई तुम उसी भाँति अच्छी नहीं लगती जिस प्रकार गङ्गा और यमुना के बीच में आ जाने वाली कोई क्षुद्र नदी अच्छी नहीं मालूम पड़ती।।16।।

शब्दार्थ – मम = मेरी, मातुः = माता कौशल्या, मातुः = सुमित्रा, मध्यस्थ = मध्य में स्थित, त्वम् = कैकेयी, गङ्गायमुनयोर्मध्ये = गंगा और यमुना के मध्य, कुनदीव = किसी कुनदी की तरह।

टिप्पणी – गङ्गायमुनयोः = गङ्गा च यमुना च तयोः (द्वन्द्व समास), कुनदी = कुत्सिता नदी (कर्मधारय समास), मातुश्च = मातुः+च (विसर्ग सन्धि), कुनदीव = कुनदी+इव (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

कैकेयी – जात! किं मया कृतम्? (जाद! कि मए किदं?)

भरतः – किं कृतमिति वदसि?

वयमयशसा, चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगैः सह लक्ष्मणः।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै–
र्धिगिति वचसा चोग्रेणात्मा त्वया ननु योजिताः।।17।।

अन्वयः – त्वया वयम् अयशसा योजिताः। आर्यः चीरेण योजितः। नृपः गृहमृत्युना योजितः। कृत्स्ना अयोध्या प्रततरुदितैः योजिता। लक्ष्मणः मृगैः सह योजितः। दयिततनयाः अम्बाः शोकेन योजिताः। स्नुषा अध्वपरिश्रमैः योजिता। आत्मा च धिगिति उग्रेण वचसा च योजितः।।17।।

व्याख्या – भरतः सर्वानर्थकारिणी मातरं त्वया किं किमनर्थं न कृतमिति भर्त्सयति–वयमित्यादि। त्वया वयम् अयशसा = अपकीर्त्या योजिताः। भरत एव राज्यलोभेन स्वामातरं सम्प्रेर्य एवं तवानित्येवमरूपेणायशसेत्यर्थः। आर्यः = रामः चीरेण = वल्कलेन योजितः, एवमग्रेऽपि यथा लिङ्गवचन विपरिणभ्य योजिता पदस्यान्वयो विधेयः। नृपः = राजा दशरथः गृहमृत्युना = गृहमरणेन। तव कारणात् 'योगेनान्ते तनुत्यजाम्' इत्येवं कर्त्तुमुचितो दशरथः गृहे एव मरणं प्राप्त्वानित्यर्थः। कृत्स्ना = पशुपक्षिप्रकृत्यादियुक्ता अयोध्या प्रततरुदितैः = अविरताश्रुपातैः योजिता। लक्ष्मणः मृगैः = वनवासिभिः सह योजितः। दयिततनयाः दयिताः = प्रियाः तनयाः यासां ताः अम्बा = मातरः शोकेन = पतिपुत्रजन्येन शुचा योजिताः। स्नुषा = पुत्रवधूः सीता अध्वपरिश्रमैः =

मार्गसञ्चरणहदैः योजिता। आत्मा = स्वयं च उग्रेण = मर्मभेदिना भयङ्करेण विगिति वचसा धिक् कैकेयीमिति निन्दार्थकेन वचनेन योजितः। हरिणीवृत्तम्। तुल्ययोगितालङ्कारः।।17।।

अनुवाद –

कैकेयी – बेटा मैंने क्या किया?

भरत – क्या कहती हो कि मैंने क्या किया?

हमें अपकीर्त्ति से युक्त किया। राम को वल्कल पहनाया। बेचारे राजा जिन्हें योगयुक्त हो वन में प्राण देना चाहिये था वे घर में ही मृत्यु के शिकार हुए। पशुपक्षियों समेत सारी अयोध्या रुला दी। लक्ष्मण को वन में मृगों का सहचारी बनाया। पुत्रों को प्यार करने वाली माताओं को पति एवं पुत्र के शोक से युक्त किया। पतोहू को वन में पैदल चलाकर खेदयुक्त किया और बहुत क्या कहें तूने स्वयं अपने को मर्म को भेदन करने वाले महाभयङ्कर धिक्कार के शब्दों का भाजन बनाया।।17।।

शब्दार्थ – वयम् = हम लोग, अयशसा = अपयश से, नृपः = राजा दशरथ, गृहमृत्युना = घर पर ही मृत्यु, सततरुदितैः= निरन्तर रोने से युक्त, दयिततनयाः = पुत्रों से स्नेह करने वाली, स्नुषा = वधू सीता, अध्वपरिश्रमे = मार्ग के परिश्रम से, धिक् = धिक्कार है।

टिप्पणी – दयिततनयाः = दयिताः तनयाः यासां ताः (बहुव्रीहि समास), अध्वपरिश्रमैः = अध्वना परिश्रमैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), गृहमृत्युना = गृहे मृत्युना (सप्तमी तत्पुरुष समास), चीरेणार्यो = चीरेण+आर्यः (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में तुल्ययोगिता अलंकार एवं हरिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''रसयुगहयैर्नसो म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा''** अर्थात् जिस छन्द में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण हों तथा छः, चार और सप्तम वर्णों पर यति हो वह हरिणी छन्द कहलाता है।

मूलपाठ –

कौशल्या – जात! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम्? (जाद! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वन्दसि मादरं?)

भरतः – मातरमिति। अम्ब! त्वमेव मे माता। अम्ब! अभिवादये।

कौशल्या – नहि, नहि! इयं ते जननी। (णहि णहि! इअं दे जणणी।)

भरतः – आसीत् पुरा। न त्विदानीम्। पश्यतु भवती –

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्म भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता।।18।।

अन्वयः – शीलसङ्क्रान्तदोषैः तावत् पुत्राः स्नेहं त्यक्त्वा अपुत्राः क्रियन्ते। एष अहं लोके अपूर्वं धर्म स्थापयामि। भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु।।18।।

व्याख्या – शीलसङ्क्रान्तदोषैः–शीलेन = स्वभावेन सङ्क्रान्तः = सम्मिश्रितः दोषैः = दुर्गुणैः मन्थरादिपरिजनगतदुष्टस्वभावसंक्रमणरूपदुर्गुणैः, तावत् प्रथमम् किया। पुत्रा अपि

स्नेहम् = सौहार्दं त्यक्त्वा = परित्यज्य–अपुत्राः क्रियन्ते = अपुत्रवद् गण्यन्ते। अनया = दुष्टया मन्थराकुसंगेन पुत्रोचितव्यवहारमकृत्वा मयि पुत्र वत्सलता विनाशिता। एषोऽहं लोके = जगति किमप्यपूर्वम् = अन्यैरनाचरितम् धर्मम् = धर्ममर्यादां स्थापयामि = प्रवर्त्तयामि। भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्त्विति। पुत्रद्रोहद्वारेण स्वभर्तृमरणरूपद्रोहाचरणान्माता अपि तिरस्कारभाजनेन स्वमातृत्वं परित्यजत्वित्यर्थः। शालिनीवृत्तम्। 'शालिन्युक्ता तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति तल्लक्षणम्। अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः।।18।।

अनुवाद –

कौशल्या – प्रिय पुत्र! तुम शिष्टों के आचरण को जानते हुए भी अपनी माता को प्रणाम क्यों नहीं करते।

भरत – क्या कहती हो, ये हमारी माताजी! आप ही मेरी माता हैं। अतः अब तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

कौशल्या – नहीं नहीं। तुम्हारी माता तो यही हैं।

भरत – पहले थीं, पर अब नहीं। आप देखें।

संसर्गजन्य स्वभाव के दोष से आक्रान्त होकर जब इन्होंने स्नेह कर अपने पुत्र को पुत्र नहीं समझा तो मैं भी आज से एक धर्ममर्यादा स्थापित करता हूँ कि अपने पति से द्रोह करने वाली माता भी अब माता नहीं कही जायगी।।18।।

शब्दार्थ – शीलसङ्क्रान्तदोषैः = स्वाभाविक दोषों से, स्नेहं त्यक्त्वा = स्नेह को छोड़कर, अपुत्राः क्रियन्ते = अपुत्र किए जा रहे हैं, लोके = संसार में, अपूर्वम् = अद्भुत, भर्तृद्रोहात् = पति से द्रोह के कारण, अमाता = कुमाता।

व्याकरण – शीलसङ्क्रान्तदोषैः = शीलेन सङ्क्रान्ताः दोषाः यस्मिन् (बहुव्रीहि समास), पुत्रास्तावत् = पुत्राः+तावत् (विसर्ग सन्धि), स्थापयाम्येव = स्थापयामि+एव (यण् सन्धि), भर्तृद्रोहात् = भत्रा द्रोहात् (तृतीया तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में अप्रक्तुतप्रशंसा अलंकार और शालिनी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः''** अर्थात् जिस छन्द में एक मगण, दो तगण, तदनन्तर दो गुरुवर्ण हों तथा चार और सात वर्णों पर यति हो वह शालिनी छन्द कहलाता है।

मूलपाठ –

कैकेयी – जात! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम्। (जाद! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मया तह उत्तं।)

भरतः – किमिति किमिति?

कैकेयी – पुत्रको मे राजा भवत्विति। (पुत्तओ मे राजा होदु त्ति।)

भरतः – अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः?

पितुर्मे औरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते।
दयिताः भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ? ।।19।।

अन्वयः – (आर्यः रामः) मे पितुः औरसः पुत्रो न भवति किम्? क्रमेण नाभिषिच्यते किम्? मे भ्रातरः दयिताः न स्युः किं वा प्रकृतीनां न रोचते किम्? ।19।।

व्याख्या – (आर्यः = रामः) मे पितुः औरसः = स्ववीर्योत्पन्नः पुत्रो न किं काक्वा रामोऽपि मलितुः दशरथस्यौरसः पुत्रोऽस्त्येव। क्रमेण = ज्येष्ठता क्रमेण नाभिषिच्यते किम्? अस्मत्कुले ज्येष्ठ एव राजा भवतीति ज्येष्ठत्वानदभिषेकोऽपि न्याय्य एवेति भावः। भ्रातरः दयिताः = प्रियाः न किम्? रामः अस्मान् न प्रियान् मन्यते किम्? अथवा वयं भ्रातरः रामे राज्येऽभिषिच्यमाने न प्रसीदामः किम्? अथवा रामराज्याभिषेकः प्रकृतीनां प्रजानां न रोचते किम्? अनुष्टुप् छन्दः ।।19।।

अनुवाद –

कैकेयी – पुत्र! मैंने तो महाराज की सत्यप्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये वैसा किया।

भरत – क्या कही थी, क्या कही थी।

कैकेयी – यही कही थी कि मेरा पुत्र राजा बने।

भरत – अच्छा तो यह बताओ कि ये आर्य राम आपके क्या हैं?

क्या वे पिताजी के औरसपुत्र नहीं है? क्या अभिषेक के क्रम में राम ज्येष्ठ नहीं थे? क्या उनका अभिषेक भाइयों की प्रसन्नता का कारण नहीं था? अथवा वे अपने भाइयों से प्यार नहीं करते थे अथवा वे प्रजाजनों के लिये उपयुक्त राजा नहीं थे।।19।।

शब्दार्थ – पितुर्मे = मेरे पिता जी का, औरसः पुत्रः = स्वयं का पुत्र, क्रमेण = क्रमानुसार, न अभिषिच्यते किम् = राज्याभिषेक नहीं हो रहा था क्या?, प्रकृतीनाम् = राजाओं को।

टिप्पणी – पितुर्मे = पितु+मे (विसर्ग सन्धि), नौरसः = न+औरसः (वृद्धि सन्धि), क्रमेणाभिषिच्यते = क्रमेण+ अभिषिच्यते (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में काकु वक्रोक्ति और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

कैकेयी – जात! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या? (जाद! सुक्कलुद्धा णणु पुच्छिदब्बा!)

भरतः – वल्कलैर्हृतराजश्रीः पदातिः सह भार्यया।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्केऽप्येतदुदाहृतम्।।20।।

अन्वयः – वल्कलैः हृतराज्यश्रीः य तत्रापि पदातिः तत्रापि भार्यया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तम्। एतदपि शुल्के उदाहृतम् किमिति शेषः।।20।।

व्याख्या – वल्कलैः = चीरैः हृतराज्यश्रीः = वल्कलपरिधानार्थं विवशीकृत्य हृता स्वायत्तीकृता राज्यश्रीः = राज्यैश्वर्य तत्रापि पदातिः = पादचारः तत्रापि भार्यया = देव्या सीतया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तम् = निर्दिष्टम्। भार्यया सह आर्य रामो त्वया वनवासार्थमनुशिष्टः एतदपि शुल्के निर्दिष्टमासीत् किम्? त्वया अत्यन्तं गर्हणीयमाचरितमिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः।।20।।

अनुवाद –

कैकेयी – प्रिय पुत्र! तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह सब शुल्क में की गई प्रतिज्ञा के कारण हुआ।

भरत – राम को वल्कल पहनाया। उनकी राज्यश्री लूट ली। उन्हें पैदल उसमें भी भार्या के साथ वन भेजा गया क्या शुल्क के शर्त में यह सब बातें थीं?।।20।।

शब्दार्थ – वल्कलैः = वल्कल वस्त्रों को धारण करके, ह्रतराजश्रीः= राजलक्ष्मी को छीनकर, भार्यया सह = पत्नी सहित, पदातिः = पैदल, वनवासम् = वन जाने के लिए, आज्ञप्तः = आज्ञा दिया गया, शुल्के = विवाह शुल्क में, उदाह्रतम् = कहा गया था।

टिप्पणी – ह्रतराजश्रीः = ह्रतः राज्यश्रीः यस्य सः (बहुव्रीहि समास), त्वयाज्ञप्तः = त्वया+आज्ञप्तः (दीर्घ सन्धि), शुल्केऽपि = शुल्के+अपि (पूर्वरूप सन्धि), अप्येतत् = अपि+एतत् (यण् सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

कैकेयी – जात! देशकाले निवेदयामि। (जाद! देशकाले णिवेदेमि।)

भरतः – अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात्।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः? ।।21।।

अन्वयः – यदि अयशसि लोभः तर्हि अस्मान् कीर्तयित्वा किम्? किम् नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात् तु अथ नृपतिमाता इत्येष शब्दः तव इष्टः तदा भवति किम् आर्यो तव पुत्रः न। सत्यं वदतु।।21।।

व्याख्या – अयशसीति–यदि तव अयशसि लोभः = अपकीर्त्तिवाञ्छा तदा अस्मान् कीर्तयित्वा किम्। अस्मन्नामसंकीर्तनेन किम्। विनाप्रयोजनमेवायशसः सुलभत्वादिति भावः। किम् नृपफलतर्षः = राज्यतृष्णा, किं नरेन्द्रः = राजा न दद्यात् अपि तु दद्यादेव। तु पक्षान्तरे। अथ प्रश्ने नृपतिमाता = राजमाता इति एष शब्द तवेष्टः तवाभिलषितः। तदा हे भवतिसंबोधनम् आर्यः = रामः तव पुत्रः न किम् इति सत्यं वदतु। अथवा भवति क्रियापदं तेन रामः तव पुत्रो न भवति किम्–इत्येवम् रूपेण सत्यपि रामे त्वं राजमाता भवेः इत्यर्थः। मालिनीवृत्तम्।।21।।

अनुवाद –

कैकेयी – प्रिय पुत्र! यह तो उचित देश-काल प्राप्त होने पर कभी बताऊँगी।

भरत – यदि तुम्हें अपकीर्त्ति की अभिलाषा थी तो तुमने हमारा नाम उसमें क्यों लगाया? तुम्हें राज्य की ही अभिलाषा थी तो क्या राजा उसे नहीं दे सकते थे? और यदि तुम्हें राजमाता कहलाने की अभिलाषा थी तो क्या राम तुम्हारे पुत्र नहीं हैं? यह सच-सच कहो।।21।।

शब्दार्थ – यदि अयशसि = यदि तुम्हारा अपयश में ही, लोभः = लोभ था तो, अस्मान् = हम लोगों का, कीर्तयित्वा = नाम लेकर, किम् = क्या लाभ हुआ?,

नृपफलतर्षः = राजा के फल की इच्छा, नरेन्द्रः = राजा दशरथ, न दद्यात् किम् = नहीं दे देते क्या?, अथ यदि नृपति माता = और यदि तुम्हें राजमाता, एष शब्द = यह शब्द, इष्टः = प्रिय था तो, भवति = आप, सत्यं वदतु = सच बोलें, किम् आर्यः = क्या श्री राम, तव पुत्रः न = तुम्हारा पुत्र नहीं है।

टिप्पणी – अयशसि = न यशः अयशः (नञ् तत्पुरुष समास), नृपफलतर्षः = नृप फले तर्षः (सप्तमी तत्पुरुष समास), नरेन्द्रः = नराणाम् इन्द्रः (षष्ठी तत्पुरुष समास), नृपतिः = नृणां पतिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), त्वेष्टः = तव+इष्टः (गुण सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में मालिनी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकैः''** अर्थात् जहाँ दो नगण, एक मगण और दो यगण हों, वहाँ मालिनी छन्द होता है।

मूलपाठ –

कष्टं कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती।
न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती–
महो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम्।।22।।

अन्वयः –राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः (वियुज्यमान इति शेषः) न गणितः। ज्येष्ठं सुतं त्वं व्रज इति वनं प्रेषितवती। जनकतनयां वल्कलवतीं दृष्ट्वा यत् तव हृदयं न शीर्णम्। तत् हे भवति भवत्या हृदयम् धात्रा वज्रकठिनम् सृष्टम् इत्यहो।।22।।

व्याख्या – त्वयेति – राज्यैषिण्या पुत्रार्थः राज्यकामुक्या त्वया नृपतिः राजा असुभिः प्राणैः परित्यज्यमानः न गणितः नापेक्षितः। भर्तृद्रोहः कृत इत्यर्थः। ज्येष्ठं सुतं पुत्रं च त्वं व्रज इत्युक्त्वा वनं प्रेषितवती मदभिषेकदर्शनार्थं त्वं राम नगरान्निष्कासितवती पुत्रद्रोहः कृत इत्यर्थः। जनकतनयां सीतां वल्कलवती चीर वासं वसानां दृष्ट्वा यत् तव हृदयम् न शीर्णम् = न तत् = तस्मात् कारणात् हे भवति भवत्या हृदयम् धात्रा वज्रकठिनम् = वज्रवत् कठोरम् सृष्टम् = निर्मितम्। अत्र हेतुनानुमानकरणेनानुमित्यलङ्कारः। शिखरिणीवृत्तं च।।22।।

अनुवाद –

तुमने बहुत बुरा किया

तुमने राज्य के लोभ के कारण महाराज के प्राणों की परवाह नहीं की और 'तुम वन को जाओ' ऐसा कहकर उनके ज्येष्ठ पुत्र राम को वन में भेज दिया। इतना ही नहीं, अत्यन्त सुकुमारी जानकी को वल्कल पहने देख तुम्हारा कलेजा नहीं फटा। निश्चय ही विधाता ने तुम्हारा हृदय वज्र से भी कठोर बनाया है।।22।।

शब्दार्थ – राज्यैषिण्या = राज्य की अभिलाषा वाली, त्वया = तुम कैकेयी के द्वारा, नृपतिः = राजा दशरथ के ?, अशुभिः = प्राणों की, नैव गणितः = चिन्ता नहीं थी, त्वं ज्येष्ठं सुतम् = तुमने बड़े पुत्र को, वनं व्रज = वन जाओ यह कहकर, प्रेषितवती = भेज दिया, जनकतनयाम् = सीता को, वल्कलवतीम् = वल्कल वस्त्र धारण किए

हुए, दृष्ट्वा = देखकर, हृदयं न शीर्णम् = हृदय नहीं फटा, धात्रा = विधाता ने, वज्रकठिनम् = वज्र से भी अधिक कठोर, सृष्टा = बनाया है।

टिप्पणी – राज्यैषिण्या = राज्यस्य ऐषिण्या (षष्ठी तत्पुरुष समास), जनकतनयाम् = जनकस्य तनयाम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), वज्रकठिनम् = वज्र इव कठिनम् (कर्मधारय समास), राज्यैषिण्या = राजा+ऐषिण्या (वृद्धि सन्धि), असुभिनैव = असुभिः+नैव (विसर्ग सन्धि)

प्रस्तुत श्लोक में अनुमान अलंकार और शिखरिणी छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **''रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी''** अर्थात् जिस छन्द में यगण, मगण, नगण, समण, भगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण हो तथा छठें और ग्यारहवें वर्णों पर यति हो तो वहाँ शिखरिणी छन्द होता है।

मूलपाठ –

सुमन्त्रः – कुमार! एतौ! वशिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः –

गोपहीनाः यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।।23।।

अन्वयः – यथा गोपहीनाः गावः अरक्षिता विलयं यान्ति एवं हि नृपतिहीनाः प्रजाः विलयं यान्ति वै।।23।।

व्याख्या – यथा = येन प्रकारेण गोपहीनाः गावः अरक्षिताः रक्षणरहिताः विलयं = विनाशं यान्ति। एवं नृपतिहीनाः = राजरहिताः प्रजाः अपि शासनाभावेन विलयं यान्ति वै इति = निश्चये। वाक्योपमालङ्कारः। अनुष्टुप् छन्दः।।23।।

अनुवाद –

सुमन्त्र – कुमार! ये भगवान् वशिष्ठ और वामदेव प्रजावर्ग तथा अमात्यों को साथ आपके अभिषेक की सामग्री लिये हुए आपकी अगवानी में खड़े हैं और निवेदन करते हैं कि –

जिस प्रकार गोप के बिना गायें अरक्षित होने से नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार राजा के बिना रक्षा के अभाव में प्रजा भी विनष्ट हो जाती है।23।।

शब्दार्थ – गोपहीनाः = ग्वालों के बिना, यथा = जैसे, गावः = गायें, अपालिताः = बिना रक्षा के, विलयं यान्ति = नष्ट हो जाती हैं, एवं हि = उसी प्रकार से, नृपतिहीनाः प्रजाः = राजा से रहित प्रजायें।

टिप्पणी – गोपहीनाः = गोपेन हीनाः (तृतीया तत्पुरुष समास), नृपतिहीनाः = नृपतिना हीनाः (तृतीया तत्पुरुष समास), यान्त्यपालिताः = यान्ति+अपालिताः (यण् सन्धि), यान्ति = लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन।

प्रस्तुत श्लोक में वाक्योपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ–

भरतः – अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः।

सुमन्त्रः – अभिषेकं विसृज्य क्व भवान् यास्यति?

भरतः – अभिषेकमिति। इहात्रभवत्यै प्रदीयताम्।

सुमन्त्रः – क्व भवान् यास्यति?

भरतः – तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः।

नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ।।24।।

अन्वयः – यत्र असौ लक्ष्मणप्रियः वर्तते तत्र यास्यामि। तं विना अयोध्या नायोध्या। यत्र राघवः सा अयोध्या।

व्याख्या – तत्रेति। यत्र यस्मिन् स्थाने लक्ष्मणप्रियः–लक्ष्मणः प्रियो यस्य सः। यं च स वनं सहैव नीतवान्। असौ यत्र तिष्ठति तत्र यास्यामि। तम् आर्य रामम् विना अयोध्या नायोध्या। किन्तु यत्र राघवः आर्यः रामो वर्त्तते सा अयोध्या। रामशून्यायामयोध्यायामगमनं निष्फलमिति भावः। अपह्नुतिरलङ्कारः।।24।।

अनुवाद –

भरत – सभी प्रकृतिमण्डल हमारे साथ चलें।

सुमन्त्र – अभिषेक को छोड़ कर आप कहाँ जायेंगे?

भरत – कैसा अभिषेक? यह अभिषेक तो तत्रभवती को दीजिये।

सुमन्त्र – अच्छा आप कहाँ जायेंगे?

भरत – मैं वहीं जाऊँगा जहाँ लक्ष्मण को प्यार करने वाले आर्य राम हैं। राम के बिना अयोध्या अयोध्या कहाँ? अयोध्या तो वहीं है जहाँ राम का निवास है।।24।।

शब्दार्थ – तत्र = वहाँ, यास्यामि = मैं जाऊँगा, यत्र = जहाँ, लक्ष्मणप्रियः = लक्ष्मण से प्रेम करने वाले राम, वर्तते = हैं, तं विना = उनके बिना, अयोध्या नगरी न = अयोध्या नगरी नहीं है, राघवः = श्रीराम, सायोध्या = वही अयोध्या है।

टिप्पणी – लक्ष्मणप्रियः = लक्ष्मणः प्रियः यस्य सः (बहुव्रीहि समास), यत्रासौ = यत्र+असौ (दीर्घ सन्धि), नायोध्या = न+अयोध्या (दीर्घ सन्धि)।

प्रस्तत श्लोक में अपह्नुति अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

बोध प्रश्न

1) 'अहो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम्' कथन किसका है?

.....

.....

.....

2) 'नरेन्द्रः' पद में कौन सा समास है?

.....

.....

.....

3) 'पार्थिवः' पद का क्या तात्पर्य है?

.....

.....

4) 'कुनदी' पद का समास विग्रह कीजिए।

.....

.....

.....

5) 'त्वेष्टः' पद में कौन सी सन्धि है?

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1) 'त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

11.3 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि मातुलगृह से आते हुए भरत प्रतिमागृह को जाते हैं। यह प्रतिमागृह महलों से भी ऊँचा है तथा इसमें प्रवेश के लिए किसी की अनुमति की जरूरत नहीं है। प्रतिमागृह का पुजारी देवकुलिक सुमन्त्र तथा राजमाताओं को बताता है कि भरत मूर्च्छित हो गये हैं। आप लोग आकर उन्हें सम्भालें। सारथि सुमन्त्र अपनी आन्तरिक वेदना को प्रकट करता है और अपने जीवन का पश्चाताप करता है क्योंकि उसका रथ शून्य हो गया है तथा उसमें बैठने वाला कोई रथी नहीं बचा है। सुमन्त्र की भरत से मुलाकात होती है और दोनों में बातचीत होती है। इसी प्रसंग में कौशल्या और सुमित्रा के साथ भरत कैकेयी को देखते हैं तथा उसे देखकर क्षोभ प्रकट करते हैं। वह कैकेयी को कुत्सित नदी के समान बताते हैं। भरत कहते हैं कि कैकेयी जैसी माता को धिक्कार है। उसने केवल एक का ही नहीं अपितु सबका अनिष्ट किया है। तुमने मुझे अपयश से जोड़ा, राम को वल्कल वस्त्र पहनाया, राजा दशरथ को मृत्यु प्राप्त करवाया तथा अयोध्या को हमेशा-हमेशा के लिए आँसू दे दिए। लक्ष्मण वन में मृगों के साथ रह रहे हैं। अपने पुत्रों को प्रेम करने वाली मातायें शोक से ग्रस्त हैं तथा सीता जैसी पुत्रवधू मार्ग के परिश्रम से श्रान्त है और तुम स्वयं धिक्कार की पात्र बन गयी हो। कौशल्या भरत को समझाने का प्रयत्न करती हैं किन्तु भरत के मन का क्षोभ दूर नहीं होता वे कैकेयी को पुनः धिक्कारते हुए कहते हैं कि हे कैकेयी! अगर तुम्हें राम को वनवास देकर के अपयश ही चाहिए था तो तुमने मेरा नाम क्यों लिया? यदि तुम राज्य का फल चाहती थी तो ऐसी कौन सी वस्तु थी जो तुम्हें महाराज दशरथ नहीं दे सकते थे और यदि तुम्हें राजमाता के रूप में सम्बोधित होने की अभिलाषा थी तो क्या राम तुम्हारे पुत्र नहीं थे। भरत अपने संवादों से करुणा का दुर्लभ वातावरण निर्मित करते हैं और कैकेयी को उसके कर्तव्यों के लिए कोसते हैं। वह कहते हैं कि तुम एक अच्छी पत्नी भी नहीं हो। पत्नी कम से कम पति के प्राणों की परवाह तो करती ही है किन्तु तुमने दशरथ के प्राणों की चिन्ता नहीं की और उन्हें मरने के लिए विवश कर दिया। तुम माँ भी नहीं हो सकती क्योंकि कोई माँ

अपने पुत्र को वन नहीं भेज सकती। सीता को वल्कल वस्त्रों में देखकर तुम्हारा हृदय नहीं फटा। विधाता ने तुम्हें वज्र से भी ज्यादा कठोर बनाया है। इस प्रकार भरत पश्चाताप और दु:ख के समुद्र में स्वयं को निमज्जित कर देते हैं तथा अन्त में यह निर्णय लेते हैं कि मैं वहीं जाऊँगा जहाँ राम हैं क्योंकि राम के बिना अयोध्या अयोध्या नहीं है। अयोध्या तो वहीं है जहाँ श्रीराम विराजते है। आपने चार इकाइयों में महाकवि भास के प्रथम और तृतीय अंकों का अध्ययन किया। इस नाटक में कुल सात अंक हैं तथा संस्कृत साहित्य के रामकथाश्रित नाटकों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भास ने इस नाटक में अनेक अभिनव प्रयोग भी किए हैं जो परवर्ती संस्कृत साहित्य और संस्कृत नाट्य साहित्य में पुष्पित और पल्लवित हुए हैं।

11.4 शब्दावली

हर्म्यदुर्लभः	–	दुर्लभ महल
समुच्छ्रयो	–	उन्नत
पार्थिवः	–	राजा
अन्वास्यमानः	–	बँधा हुआ
मध्यस्थ	–	मध्य में स्थित
सततरुदितैः	–	निरन्तर रोने से युक्त
लोके	–	संसार में
औरसः पुत्रः	–	स्वयं का पुत्र
पदातिः	–	पैदल
नरेन्द्रः	–	राजा दशरथ
अशुभिः	–	प्राणों की
नृपतिहीनाः प्रजाः	–	राजा से रहित प्रजायें
यास्यामि	–	मैं जाऊँगा

11.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

i) प्रतिमानाटकम् (अनु.) डॉ. श्री कृष्ण ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर ।

ii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) डॉ. सावित्री गुप्ता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006

iii) प्रतिमानाटकम् (व्या.) आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009

iv) प्रतिमानाटकम् (सम्पा.) श्रीधरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2016

v) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (ले.) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018

11.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) 'अहो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम्' कथन भरत का है।
2) 'नरेन्द्रः' पद में षष्ठी तत्पुरुष समास है।
3) 'पार्थिवः' पद का तात्पर्य है – राजा।
4) 'कुनदी' पद का समास विग्रह है– कुत्सिता नदी।
5) 'त्वेष्टः' पद में गुण सन्धि है।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY